क्रम

1 | श्वास ही जीवन

ज़रा अपनी नाक तो बन्द कीजिए। यह ध्यान रखिए कि मुँह न खुले। पाँच मिनट तो क्या, दो-तीन मिनट भी आप अपनी नाक को बंद रखें, तो आपको दम घुटता हुआ सा महसूस होने लगता है। यदि कभी आप नदी में नहाने या तैरने के लिए गए हों, तो आपने यह

महसूस किया होगा कि आप पानी में गोता लगाने के बाद तुरन्त अपना सिर और मुँह पानी के बाहर निकाल लेते

हैं। ऐसा आप इसलिए करते हैं कि पानी के अन्दर आप साँस ले नहीं सकते और साँस रुकते ही आपका दम घुटने लगता है। ऐसा ही धुएँ में साँस लेने से प्रतीत होता है।

नदी में नहाते हुए मनुष्यों के डूबकर मर जाने की दुर्घटनाओं के बारे में प्रातः आपने सुना होगा। मनुष्य जब पानी में नीचे चला जाता है तो उसकी नाक आदि में पानी भर जाता है और वह साँस नहीं ले पाता। शीघ्र ही वह बेहोश हो जाता है और यदि वह काफी देर इसी दशा में रह जाय, तो मर भी जाता है। इसका अर्थ यह हुआ कि साँस लेने की क्रिया रुकते ही जीवन-लीला समाप्त हो जाती है। तुरन्त ही डूबे हुए व्यक्ति को दबाकर उसके पेट से पानी निकालते हैं और उसे बनावटी साँस दिलाने की कोशिश करते हैं। श्वास लौटने पर वह फिर होश में आ जाता है।

मनुष्य हर स्थान पर हर समय साँस लेता रहता है। बैठा हो या खड़ा हो, चल रहा हो या दौड़ रहा हो, सो रहा हो या जाग रहा हो, हर समय ही उसकी धोंकनी चलती रहती है। 'जब तक साँस, तब तक आस' कहावत यही चरितार्थ करती है कि श्वास ही जीवन है। मनुष्य का श्वास चल रहा है, तो मनुष्य

में जीवन है, श्वास रुकते ही निर्जीव ।

मज़े की बात यह है कि हम चौबीसों घंटे जीवनपर्यन्त साँस लेने की क्रिया में लगे रहते हैं और थकते भी नहीं । ज़िन्दगीभर या साल-दो साल या दिन-दो दिन की बात छोड़िए, कोई दूसरा कार्य लगातार चौबीस घंटे करके ही देखिए कि कितनी थकावट महसूस होती है, बदन टूटने लगता है और आराम करने को जी चाहता है । फिर साँस लेते-लेते थकान क्यों नहीं होती ?

थकान की दवा : श्वास

श्वास लेने में थकान हो भी कैसे ? श्वास तो थकान दूर करने की दवा है । जब आप दौड़ते हैं या कोई भारी बोझा उठाते हैं, खेलते या कसरत करते हैं, तो आप हाँफने लगते हैं अर्थात् आपको साँस बहुत तेज़ी से और जल्दी-जल्दी लेना पड़ता है । इसका कारण यह है कि जब मनुष्य अधिक शारीरिक श्रम करता है तो उसके शरीर की शक्ति अधिक व्यय होती है । और मनुष्य को शक्ति की कमी को जल्दी पूरा करने के लिए जल्दी-जल्दी साँस लेना पड़ता है । इसका अर्थ यह हुआ कि श्वास से ही मनुष्य को शक्ति मिलती

है। कसरत करने के पश्चात् आम तौर पर कसरत करने वाला व्यक्ति थोड़ी देर खड़ा होकर नाक से गहरे और लम्बे साँस खींचता है और मुँह से साँस छोड़ता जाता है। वह ऐसा इसलिए करता है कि साँस द्वारा वायु उसके फेफड़ों में जाती है और अन्दर जाकर उसके शरीर की थकान को दूर कर देती है जिससे उसे ताज़गी महसूस होने लगती है। कुछ सख़्त मेहनत करने के बाद आप भी लम्बी साँसें लेकर इस नुस्खे को आज़माइए। देखिए, आपकी थकान कुछ कम होती है या नहीं ?

आपने अक्सर लोगों को सुबह-शाम जंगल, बाग़, पार्क या मैदान में टहलते हुए देखा होगा। शायद आप भी यदि रोज़ाना नहीं तो कभी-कभी टहलने जाते हों। टहलना स्वास्थ्य के लिए बहुत ही लाभदायक बताया जाता है, क्योंकि टहलते समय मनुष्य स्वच्छ और ताज़ी हवा में साँस लेता है जिससे उसके शरीर को ताज़गी महसूस होती है। साँस लेने में हम बाहर वाली हवा को अपनी नाक द्वारा अपने शरीर में भर लेते हैं और फिर लगभग उसी हवा को बाहर निकाल देते हैं। अपनी नाक पर अँगुली रखकर देखिए, हवा बाहर आती हुई महसूस होती है परन्तु आम तौर पर यह महसूस

नहीं होता कि हम चारों ओर वायु से घिरे हुए हैं और हम वही वायु अपनी साँस द्वारा अन्दर ले जाते हैं। ज़रा पंखा तो हिलाइए। यह हवा कहाँ से ग्राई ? जब वायु तेज़ी से चलती है या आँधी आती है, तो हमें यह आभास होता है कि हम वायु से घिरे हुए हैं। वायु हर स्थान पर मौजूद रहती है। जब किसी बर्तन में पानी नहीं होता तो सभी लोग ग्राम तौर पर यह कह देते हैं कि वह बर्तन---लोटा या गिलास—खाली है, परन्तु क्या वह बर्तन वास्तव में खाली होता है ? प्रयोग करके देखते हैं कि गिलास खाली है या उसमें कोई पदार्थ भरा हुआ है।
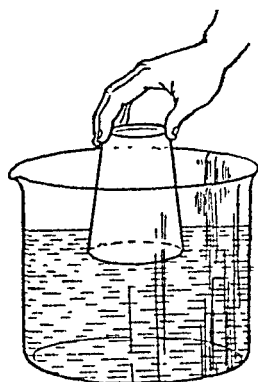
पानी में गिलास सीधा दबाया जा रहा है।
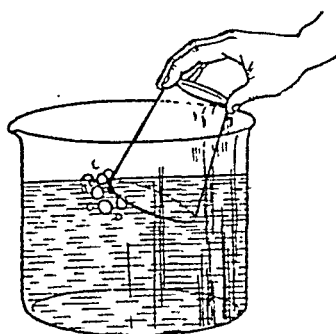
गिलास तिरछा करने पर हवा के बुलबुले निकलते हैं।

काँच के एक बड़े बर्तन में पानी भर लिया। काँच

का एक गिलास लिया और उसे खुले मुँह की ओर से बिलकुल सीधा पानी में डुबोना शुरू किया।

गिलास को पूरा डुबो दिया, फिर भी पानी गिलास में नहीं भरा। अब गिलास को थोड़ा तिरछा किया तो हमें एक ओर पानी में हवा के बुलबुले उठते दिखाई देने लगते हैं और दूसरी तरफ पानी गिलास में भरने लगता है।

गिलास को तिरछा करने से गिलास में मौजूद हवा बाहर निकलने लगती है और उसकी जगह पानी भरने लगता है। इससे यह साबित होता है कि गिलास में हवा तो थी परन्तु दिखाई नहीं देती थी। इसी प्रकार के अनुभव आप और हम जीवन में हर समय करते रहते हैं। तालाब से घड़ा भरने पर तथा किसी बड़े बर्तन में सुराही डुबोकर भरने पर भी आवाज़ निकलती है—अर्थात् घड़े या सुराही से वायु तेज़ी से निकलती है और उसकी जगह पानी भरता है।

इन सभी बातों से यही साबित होता है कि वायु हमारे चारों ओर भरी रहती है और इसी वायु को हम साँस के रूप में अपने शरीर के अन्दर ले जाते हैं। लेकिन वायु रंगहीन होने के कारण दिखाई नहीं देती।

साँस लेना केवल हमारे लिए ही नहीं, बल्कि प्रत्येक

प्राणी के लिए—चाहे वह पशु हो या कीड़ा, पेड़ हो या पौधा—सभी के लिए ज़रूरी है। जीव-जन्तुओं और पेड़-पौधों के जीवन का आधार भी वायु ही है। ये भी मनुष्य की तरह साँस लेते हैं। यदि इन्हें वायु न मिले तो ये भी निर्जीव हो जाएँ।

किसी चूहे, गिलहरी या चिड़िया को पकड़कर काँच के बर्तन में बन्द कर दीजिए। उस बर्तन का मुँह भी बन्द कर दीजिए ताकि उसमें ज़रा भी वायु न जा सके। दो-तीन घंटे बाद यदि उस बर्तन को हम देखें तो पाएँगे कि वह जानवर बिलकुल ही बेहोश पड़ा है। उसके

बेहोश होने का कारण यह है कि उसे ताज़ी हवा नहीं मिल सकी और ताज़ी हवा की अनुपस्थिति में उसका दम घुट गया। अब बर्तन का मुँह खोल दीजिए। सम्भव है कि ताज़ी हवा मिलने से वह जानवर फिर होश में आ जाय और हिलना-जुलना शुरू कर दे।
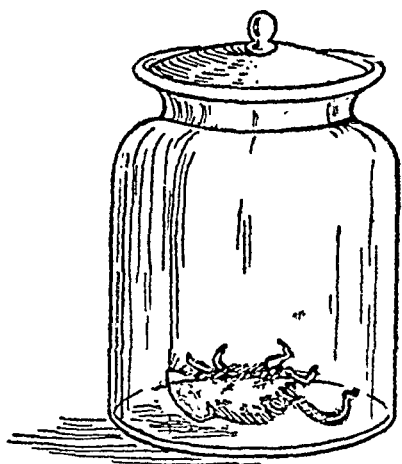
ताज़ी हवा मिलने के कारण ही इनमें हिलने की शक्ति आती हैं अर्थात् जीवन का संचार होता है।

पौधों को भी इसी प्रकार वायु की आवश्यकता हैं। पौधे भी मनुष्य और जानवर की तरह वायु में साँस लेते हैं। यदि उन्हें भी वायु न मिले तो उनका भी जीवन समाप्त हो जाता है अर्थात् वे सूख जाते हैं। किसी एक छोटे पौधे को गमले समेत सफ़ेद पारदर्शी प्लास्टिक के थैले में बन्द करके रख दिया जाय तो एक-दो दिन में ही पौधा मुर्झा जायगा। थैले लगा देने से पौधे को ताज़ी हवा नहीं मिल पाती, इसलिए वह मुर्झा जाता है।

ऊपर के प्रयोगों से यह निश्चित रूप से सिद्ध हो जाता है कि वायु में साँस लेना प्रत्येक जीव के लिए ज़रूरी है।

वायु : शक्ति का साधन

हरेक मशीन या इंजिन को चलाने के लिए थोड़ी-बहुत शक्ति की ज़रूरत होती है। इंजिन में शक्ति पैदा करने के लिए कोयला, पानी, पैट्रोल या डीज़ल का इस्तेमाल किया जाता है। इंजिन में जब कोयला या तेल जलता है तो शक्ति पैदा होती है। हमारा शरीर

भी एक इंजिन की तरह ही काम करता है। चलने-फिरने या किसी भी प्रकार का काम करने के लिए हमारे शरीर को शक्ति की आवश्यकता होती है। जिस प्रकार से इंजिन में शक्ति पैदा करने के लिए तेल या कोयले के रूप में ईंधन जलाया जाता है, उसी प्रकार से हमारे शरीर में भोजन ईंधन का काम देता है। इंजिन में शक्ति तेल या कोयले के जलने पर ही पैदा होती है और तेल या कोयला बिना वायु के नहीं जल सकता। इसलिए हरेक इंजिन में वायु पहुँचाने का प्रबन्ध रहता है। इसी प्रकार हमें भोजन से शक्ति उत्पन्न करने के लिए वायु की आवश्यकता होती है। भोजन हमारे आमाशय और आँतों में पच-कर हमारे ख़ून में मिल जाता है और साँस द्वारा ली हुई वायु हमारे फेफड़ों में पहुँचकर ख़ून के साथ मिल-कर शरीर के सभी अंगों और भागों में पहुँच जाती है। वहाँ ख़ून के साथ पहुँचा हुआ भोजन जल जाता है, और इस प्रकार शरीर के हर हिस्से को शक्ति मिल जाती है।

यह तो स्पष्ट हो गया कि प्रत्येक जीवधारी के लिए साँस लेना बहुत ही आवश्यक है, परन्तु प्रश्न यह उठता है कि क्या कोयले का जलना और साँस लेना एक

सही क्रियाएँ हैं ? क्या वायु का सारा भाग ही जलने और साँस लेने के काम आता है या वायु का कोई अंश मात्र ही ? हम किस प्रकार साँस लेते हैं और किस प्रकार वायु हमारे ख़ून में मिलकर हमें शक्ति और जीवन प्रदान करती है ? क्या अन्य जानवर और पौधे भी हमारी तरह ही साँस लेते हैं या उनके शरीर में साँस लेने के लिए कोई और विशेष प्रबन्ध होता है ?

2 जलना, साँस लेना और वायुमण्डल

इंजिन में कोयले अथवा तेल के जलने से शक्ति उत्पन्न होती है और संसार के सभी प्राणियों के शरीर में भोजन और वायु के संयोग से गर्मी और शक्ति पैदा होती है। क्या जलना और साँस लेना एक-सी क्रियाएँ हैं?
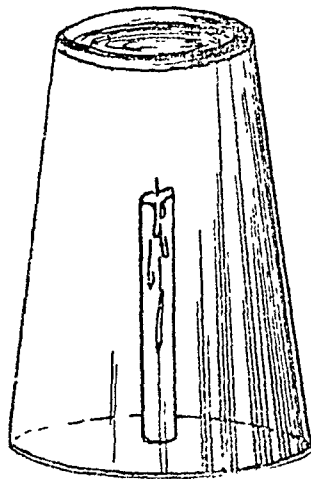
एक मोमबत्ती लीजिए और उसे जलाइए। हवा में मोमबत्ती जलती रहती है। अब मोमबत्ती को एक

गिलास से ढँक दीजिए। मोमबत्ती बुझ जायगी। क्यों ?

गिलास ढँक देने से मोमबत्ती को हवा नहीं मिल पाती और वह बुझ जाती है। इसी प्रकार का प्रयोग हम अन्य वस्तुओं के साथ कर सकते हैं। यदि आप लालटेन या लैम्प को ध्यान से देखें तो आपको यह पता चलेगा कि लालटेन और लैम्प की चिमनी के नीचे वाले भाग में कुछ छेद होते हैं ताकि उन छेदों में से होकर ताज़ी हवा जाती रहे। जलते हुए कागज़ या कपड़े के टुकड़े को बुझाने के लिए उसे हम अपने जूते से दबा देते हैं। जूते के दबा देने से उसे वायु नहीं मिल पाती और वह बुझ जाता है। यदि किसी व्यक्ति के कपड़ों में आग लग जाती है तो उसे बुझाने के लिए उसे कम्बल में लपेट देते हैं। कम्बल लपेट देने से वायु का जाना रुक जाता है और आग बुझ जाती है। इन सब प्रयोगों से यही सिद्ध होता है कि जलने के लिए भी वायु की आवश्यकता होती है। जिस प्रकार प्राणियों को हवा न मिलने पर उनका दम घुट जाता है, ठीक उसी प्रकार वायु न मिलने से जलती हुई चीज़ें बुझ जाती हैं।

जिस गिलास से जलती हुई मोमबत्ती को ढँक

दिया था, यदि उस गिलास में थोड़ा-सा चूने का पानी डाला जाय तो वह दूधिया हो जायगा। वस्तुओं के जलने से एक प्रकार की गैस पैदा होती है, जो चूने के पानी को दूधिया कर देती है। इस गैस को कार्बन-डाई-ऑक्साइड कहा जाता है।

प्राणियों के साँस लेने की क्रिया के भी दो भाग होते हैं। एक बार साँस द्वारा हवा को शरीर के अन्दर खींचते हैं तथा क्रिया के दूसरे भाग में तुरन्त ही उसे बाहर निकालते हैं। एक बोतल में चूने का पानी लिया और उसमें अपने मुँह से फूँक मारी। अरे, यह क्या ? यह चूने का पानी भी दूधिया हो गया। इससे यह सिद्ध होता है कि जो गैस वस्तुओं के जलने से पैदा होती है, वही गैस हमारे द्वारा शरीर से बाहर छोड़ी गई हवा में भी होती है; अर्थात् साँस लेने और वस्तुओं के जलने दोनों क्रियाओं

में ही कार्बन-डाई-आॅक्साइड उत्पन्न होती है।

एक पतले काँच के गिलास में काफी ठंडा पानी लीजिए। कागज़ के एक टुकड़े से उसके बाहर का तल साफ कर लीजिए। एक मोमबत्ती जलाकर गिलास को उसके ऊपर कुछ देर तक पकड़े रहिए। गिलास के बाहरी तल पर कुछ भाप-सी दिखलाई पड़ेगी। इससे यह सिद्ध होता है कि जब मोमबत्ती हवा में जलती है तो पानी भी बनता है।
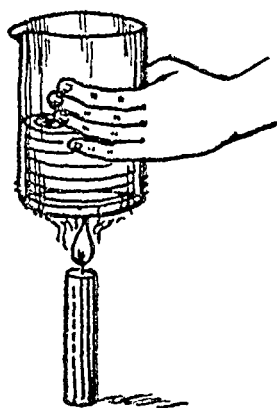
अब एक साफ प्लेट या शीशे पर अपने साँस से निकली हुई वायु छोड़ो। स्लेट या शीशे की सतह धुँधली पड़ जायगी। इससे यह सिद्ध होता है कि जो हवा फेफड़ों में से बाहर आती है उसमें भी पानी की भाप होती है जो ठंडी सतह को छूने पर द्रवीभूत हो जाती है।

इसके अतिरिक्त वस्तुओं के जलने से गर्मी भी उत्पन्न होती है। साँस छोड़ते समय अपनी नाक के नीचे अँगुली लगाकर देखिए तो छोड़ी हुई हवा कुछ

गर्म प्रतीत होगी। दूसरे हमारे शरीर में गर्मी हर समय बनी रहती है और हमारे शरीर का तापक्रम 98·4° फारेनहाइट रहता है। यह गर्मी हमारे शरीर के भीतर वायु की क्रिया से ही उत्पन्न होती है।

इस प्रकार यह बात निश्चित रूप से सिद्ध हो जाती है कि साँस लेना और जलना बिलकुल एक-सी ही क्रियाएँ हैं। साँस लेने और जलने दोनों ही क्रियाएँ होने पर कार्बन-डाई-ऑक्साइड, पानी और गर्मी उत्पन्न होती है। अन्तर केवल इतना है कि मोमबत्ती में मोम और धागा जलता है और हमारे शरीर में भोजन। दोनों क्रियाओं के लिए हवा का होना बहुत ज़रूरी है। यदि हवा न हो तो न कोई वस्तु जल सकती है और न प्राणी ही साँस ले सकते हैं।

यह वायु हमारे चारों ओर भरी रहती है, तंग-से-तंग स्थान पर भी हवा पहुँच जाती है। यह वायु पृथ्वी के ऊपर सैकड़ों मील तक फैली हुई है। पृथ्वी के ऊपर वायु का एक समुद्र-सा होता है, जिसे हम वायुमण्डल कहते हैं, परन्तु हम जैसे-जैसे ऊँचाई पर चढ़ते जाते हैं, हवा हल्की होती जाती है।

परन्तु अब देखना यह है कि जलने की क्रिया में

पूरी वायु काम आती है या उसका कोई अंश ही काम में आता है। काँच का एक चौड़ा बर्तन लीजिए और उसमें पानी भर दीजिए। एक डाट या कार्क पर एक जलती हुई मोमबत्ती लगाकर उसे पानी पर तैरा दिया। एक बिना तली वाली बोतल लीजिए और उसे जलती हुई मोमबत्ती पर ढँक दीजिए। बोतल में जहाँ तक पानी आए, वहाँ एक निशान लगा दीजिए। बोतल के शेष भाग में हवा है। बोतल का मुँह डाट से बन्द कर दिया। थोड़ी देर बाद मोमबत्ती बुझ जायगी और बोतल के केवल $\frac{1}{5}$ भाग में पानी चढ़ जायगा। अब बोतल की डाट खोलकर एक जलती हुई तीली बोतल के मुँह के अन्दर डालिए तो वह तीली नहीं जलेगी।

इसी तरह का एक और प्रयोग फासफोरस को जलाकर करते हैं। पानी भरी हुई काँच की नांद में तैरती हुई चीनी की एक प्याली में फासफोरस का टुकड़ा रख

दिया तथा इसे भी बिना डाट वाली बोतल से ढँक दिया। बोतल का जो भाग पानी से ऊपर है उसे पाँच समान भागों में बाँटकर निशान लगा दिए। लोहे की एक गर्म सलाख से फासफोरस को छूकर उसे जला दिया और बोतल की डाट को तुरन्त बन्द कर दिया।

फासफोरस का एक सफेद धुआँ बनकर पानी में घुलकर धीरे-धीरे ग़ायब हो जायगा। पानी का तल धीरे-धीरे पहले निशान तक चढ़ जायगा अर्थात् बोतल के भीतर की वायु का 1 भाग जलने की क्रिया में काम आ गया। अब बोतल में जलती हुई तीली ले गए तो वह बुझ गई।
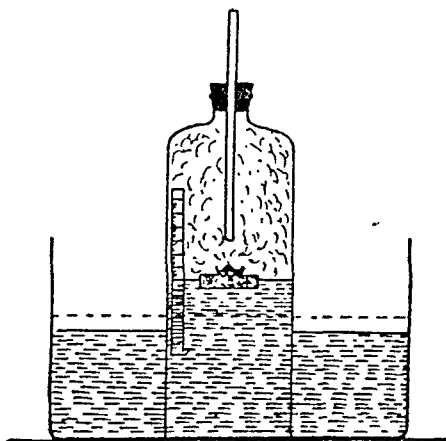
ऊपर के प्रयोगों से स्पष्ट हो जाता है कि वायु का $\frac{1}{5}$ भाग ही वस्तुओं को जलाने में सहायक होता है तथा शेष $\frac{4}{5}$ भाग ऐसा होता है जिसमें वस्तुएँ नहीं जल पातीं। वायु का वह $\frac{1}{5}$ भाग, जो वस्तुओं के जलने में

सहायक होता है, 'सक्रिय भाग' होता है और ऑक्सीजन कहलाता है तथा $\frac{4}{5}$ भाग 'निष्क्रिय' होता है, जिसे नाइट्रोजन कहते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि वायु में मुख्य रूप से दो गैसें—ऑक्सीजन और नाइट्रोजन होती हैं तथा केवल ऑक्सीजन ही जलने में सहायक या क्रिया करने वाली गैस होती है। जिस प्रकार वस्तुओं के जलने में केवल वायु का सक्रिय भाग अर्थात् ऑक्सीजन ही काम में आती है, उसी प्रकार प्राणी साँस द्वारा जो वायु अपने शरीर में ले जाते हैं, उसमें से केवल वायु का वही सक्रिय भाग अर्थात् ऑक्सीजन अपनी क्रिया द्वारा शरीर को गर्मी और शक्ति प्रदान करता है और शरीर के भीतर जाने वाली वायु का 'निष्क्रिय' भाग अर्थात् नाइट्रोजन जैसी की तैसी ही बाहर निकाल दी जाती है। क्या यह निष्क्रिय भाग भी किसी काम का होता है? वायु में मौजूद यह नाइट्रोजन वायु के सक्रिय भाग ऑक्सीजन पर नियंत्रण रखती है। नाइट्रोजन ऑक्सीजन की क्रिया को कम कर देती है। यदि नाइट्रोजन न होती तो ऑक्सीजन की तेज़ क्रिया के कारण जलती हुई वस्तुएँ आसानी से न बुझ पातीं। वैसे जीवधारियों के लिए कुछ नाइट्रोजन की भी आवश्यकता होती है, परन्तु हम नाइट्रोजन को वायु में से लेकर उपयोग में नहीं

लाते बल्कि अपने भोजन के नाइट्रोजनयुक्त पदार्थों द्वारा उसे प्राप्त कर लेते हैं।

वायुमण्डल की रचना

वायु मुख्य रूप से दो गैसों—अर्थात् ऑक्सीजन और नाइट्रोजन का ही मिश्रण होता है। परन्तु इन दोनों गैसों के अतिरिक्त कुछ अन्य गैस और पदार्थ भी वायु में होते हैं।

जब हम बर्फ़ को किसी बर्तन में डालते हैं तो उस बर्तन के बाहर की ओर पानी की बूँदें चमकने लगती हैं। पानी की ये बूँदें कहाँ से आईं ? कास्टिक सोडा हवा में खुला छोड़ देने पर पिघलने लगता है अर्थात् वह हवा में मौजूद पानी की वाष्प को चूस लेता है। इसी प्रकार वर्षा ऋतु में नमक भी पसीज जाता है। इन बातों से यह सिद्ध होता है कि वायुमण्डल में जल-वाष्प मौजूद होते हैं। वायु में जल-वाष्प की मात्रा सदा एक-सी नहीं रहती। वर्षा के मौसम में नमी की मात्रा बढ़ जाती है।

घर के अन्दर काँच की प्याली में चूने के पानी को खुला छोड़ दिया जाय तो थोड़े समय के पश्चात् वह दूधिया हो जाता है और उसके ऊपर एक पपड़ी-सी

जम जाती है। इससे यह सिद्ध होता है कि वायु में थोड़ी-बहुत मात्रा में कार्बन-डाई-ऑक्साइड गैस भी होती है।

आपने किसी अँधेरे कमरे में सूराख़ में से होकर प्रकाश आता हुआ देखा होगा। उसमें धूल के कण उड़ते नज़र आते हैं।

इस प्रकार वायुमण्डल में आमतौर पर नीचेलिखी गैस और पदार्थ होते हैं। वैज्ञानिकों ने इनका निम्न अनुपात ज्ञात किया है—

(1) ऑक्सीजन 20.9%
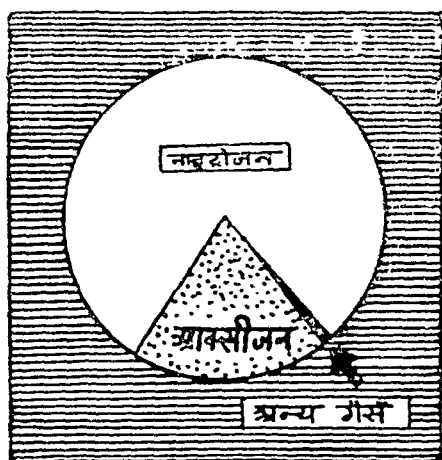
(2) नाइट्रोजन 78.0%

(3) कार्बन-डाई-ऑक्साइड .04%

(4) जल-वाष्प—निश्चित नहीं।

(5) कुछ निष्क्रिय गैस—.93%
(आरगन, नियान आदि)

(6) अन्य गैस तथा धूलकण— बहुत ही कम
(ओजोन, अमोनिया आदि) मात्रा में

परन्तु वायुमण्डल में यह अनुपात घटता-बढ़ता रहता है। अलग-अलग स्थानों पर, अलग-अलग मौसम में और भिन्न-भिन्न ताप पर वायु में पाई जाने वाली उपरोक्त गैसों की मात्रा में कुछ घटा-बढ़ी होती रहती है। जहाँ कारखाने अधिक चलते हैं और आबादी बहुत घनी है, ऐसे स्थानों पर कार्बन-डाई-ऑक्साइड की मात्रा कुछ अधिक होती है। इसके विपरीत बाग़ों और पार्कों की वायु में कार्बन-डाई-ऑक्साइड की मात्रा बहुत कम होती है। वर्षा ऋतु में वायु में जल-वाष्प की मात्रा अधिक होती है और गर्मियों के मौसम में कम। वायु में ऑक्सीजन की मात्रा सुबह के समय अधिक होती है इसीलिए लोग प्रातःकाल आम तौर पर घूमने के लिए जाते हैं।

यह स्पष्ट हो गया है कि वायु का केवल $\frac{1}{5}$ भाग

(आॅक्सीजन) ही सक्रिय होता है और उसी के सहारे जलने और साँस लेने जैसी क्रियाएँ, जो जीवन के लिए बहुत आवश्यक हैं, होती हैं। अतः आॅक्सीजन ही जीवन का आधार है।

3 जीवन का आधार : ऑक्सीजन

ऑक्सीजन ही वायु का सक्रिय भाग है, जो पदार्थों को जलने में सहायता देता है और यह भी स्पष्ट है कि मनुष्य तथा सारे जीवधारियों के लिए यह परम आवश्यक है, क्योंकि इसके बिना साँस लेना और जलना दोनों ही असम्भव हैं। इस प्रकार ऑक्सीजन जीवन का आधार है।

ऑक्सीजन संसार में सभी स्थानों पर बहुतायत से पाई जाती है। प्रकृति में अलग तथा मिली हुई—दोनों दशाओं में ही ऑक्सीजन मिलती है। वायु में ऑक्सीजन गैस के रूप में होती है। इसके अतिरिक्त संसार में लाखों ठोस, द्रव और गैस यौगिक भी ऐसे हैं जिनमें ऑक्सीजन किसी दूसरे तत्त्व या तत्त्वों के साथ जुड़ी रहती है और पहचानी नहीं जा सकती। वैज्ञानिक विभिन्न विधियों द्वारा इन यौगिकों से ऑक्सीजन निकाल भी लेते हैं।

सत्रहवीं शताब्दी तक लोगों का यह विचार था कि केवल वही चीज़ें जलती हैं, जिनमें कुछ विशेष

अग्नितत्त्व होता है जिसे वे फ्लोजस्टीन कहते थे। जब भी वह वस्तु जलती है तभी उस जलने की क्रिया में फ्लोजस्टीन समाप्त हो जाता है और बाकी वस्तु बच रहती है। इस विचार के अनुसार कोयला इसलिए जलता है कि उसमें एक अग्नितत्त्व है और राख इसलिए नहीं जलती कि उसमें वह अग्नितत्त्व समाप्त हो गया। परन्तु बाद में एक वैज्ञानिक प्रीस्टले ने यह साबित किया कि यह सिद्धान्त बिलकुल ग़लत है।
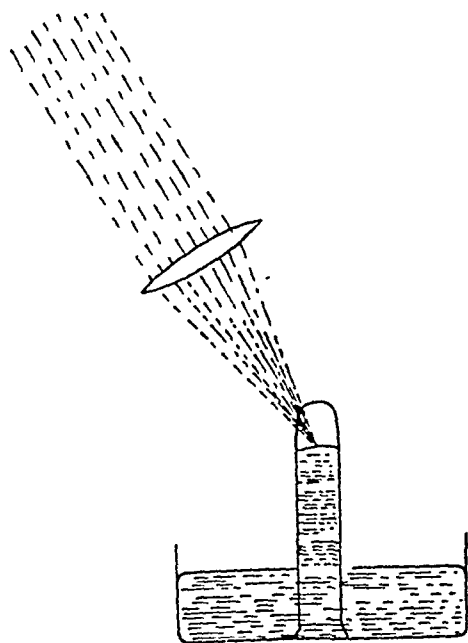
प्रीस्टले का प्रयोग

एक बार प्रीस्टले ने पारे को एक आतशी शीशे द्वारा गर्म किया और जब वह पारा जलकर समाप्त हो गया तो उसने सोचा कि क्या इसका अग्नितत्त्व भी समाप्त हो गया? लेकिन कुछ समय के पश्चात् उस

जले हुए पारे को (रैड ऑक्साइड ऑफ मरकरी) फिर गर्म किया तो उसने देखा कि उसमें से एक ऐसी गैस निकली जो आग को भड़काती है।

उन्हीं दिनों एक दूसरा वैज्ञानिक, लवेशियर, रांग के साथ प्रयोग कर रहा था। एक दिन जब उसने रांग को जलाया और उसे तोला तो उसने देखा कि जले हुए रांग का वज़न बढ़ गया और उसने प्रीस्टले के प्रयोग को ध्यान में रख-कर यह साबित किया

लवेशियर

कि जब भी वस्तुएँ जलती हैं तो इन वस्तुओं में वायु का एक भाग इनके साथ मिल जाता है जिसके कारण इनका वज़न बढ़ जाता है। लवेशियर ने वस्तुओं को जलाने के गुण के कारण वायु के इस भाग

का नाम 'ऑक्सीजन' रखा।

प्रकृति ने मनुष्य तथा अन्य जीवधारियों के लिए तो ऑक्सीजन काफ़ी मात्रा में उपलब्ध की ही है परन्तु मनुष्य भी ऑक्सीजन को थोड़ी और अधिक मात्रा में दूसरी वस्तुओं से तैयार कर लेता है।

थोड़ी मात्रा में ऑक्सीजन प्राप्त करनी हो तो पोटेशियम क्लोरेट, पोटेशियम नाइट्रेट, पारे का लाल ऑक्साइड या बेरियम-पर-ऑक्साइड को गर्म करके तैयार की जाती है। ये सभी पदार्थ ऑक्सीजन के यौगिक होते हैं, अर्थात् इन सभी पदार्थों में ऑक्सीजन मिली हुई होती है। जब इन यौगिकों को गर्म किया जाता है तो इन पदार्थों का विच्छेदन हो जाता है और इनमें से ऑक्सीजन निकलने लगती है।

अधिक मात्रा में ऑक्सीजन कई रीतियों से बनाई जा सकती है। यह तो हम सिद्ध कर ही चुके हैं कि वायु में $\frac{1}{5}$ भाग ऑक्सीजन का होता है। हवा को खूब अधिक ठंडा करके और खूब दबाव डालकर द्रवीभूत कर लिया जाता है और वह हवा पानी की तरह हो जाती है। द्रवीभूत हवा को उड़ने के लिए रख दिया जाता है। नाइट्रोजन ऑक्सीजन से पहले उड़ जाती है और बाकी द्रव में ज़्यादातर ऑक्सीजन रह जाती है।

पानी भी केवल दो ही तत्त्व—हाइड्रोजन और ऑक्सीजन से मिलकर बना है। पानी में आयतन के हिसाब से दो हिस्से हाइड्रोजन और एक हिस्सा ऑक्सीजन होती है। पानी में थोड़ा-सा गन्धक का तेज़ाब डाला जाता है। फिर इसमें बिजली गुजारी जाती है। इससे पानी का विच्छेदन हो जाता है और ये दोनों गैसें अलग-अलग इकट्ठी कर ली जाती हैं।

ऑक्सीजन गैस का कोई भी रंग नहीं होता, न ही इसमें कोई गन्ध होती है और न ही कोई स्वाद। ऑक्सीजन पानी में भी थोड़ी मात्रा में घुल जाती है और जो भी पानी हम नदी और कुओं में देखते हैं, उसमें भी थोड़ी-बहुत मात्रा में ऑक्सीजन होती ही है। मशीन में खूब ठंडा करने और खूब दबाव डालने पर ऑक्सीजन द्रवीभूत हो सकती है। द्रव ऑक्सीजन को और अधिक ठंडा करने और दबाव डालने पर वह ठोस भी बनाई जा सकती है।

जहाँ यह सत्य है कि ऑक्सीजन हर वस्तु के जलने में सहायक होती है वहाँ यह भी सत्य है कि ऑक्सीजन स्वयं नहीं जलती। जब ऑक्सीजन में कोई तत्व जलता है तो ऑक्सीजन उस तत्व से मिल जाती है और एक प्रकार के रासायनिक यौगिक वन जाते हैं,

जिन्हें 'ऑक्साइड' कहा जाता है।

लकड़ी, कोयले, मोमबत्ती, भोजन आदि में कार्बन तत्त्व होता है, जब ये वस्तुएँ जलती हैं तो ऑक्सीजन इनके साथ मिल जाती है और कार्बन-डाई-ऑक्साइड
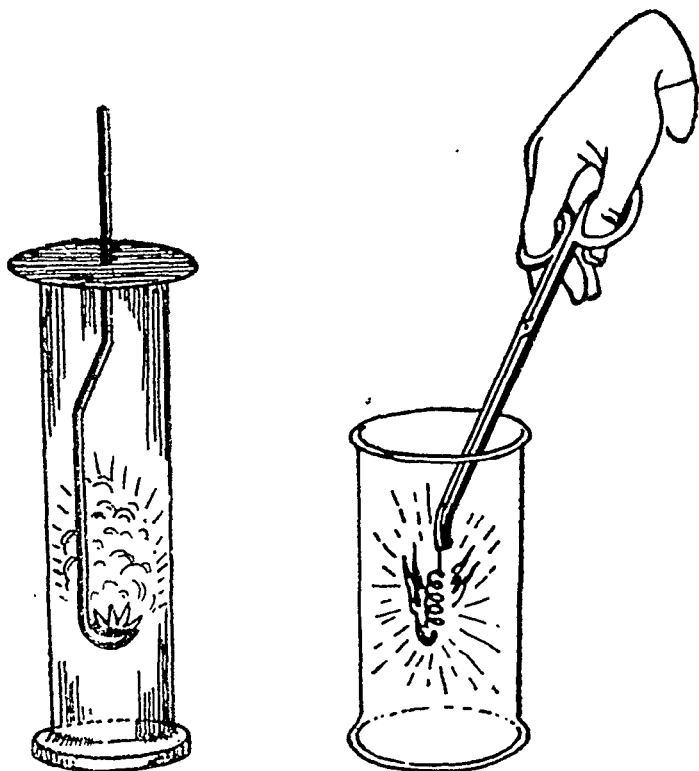
ऑक्सीजन में गन्धक जल रही है

ऑक्सीजन में लोहे का तार जल रहा है

गैस पैदा होती है। इसी प्रकार मैगनेशियम या लोहे

के तार को गर्म करके ग्रॉक्सीजन में ले जायँ तो ये धातुएँ भी ग्रधिक चमक के साथ जल उठती हैं। जलने पर इन धातुओं का भी ग्रॉक्साइड ही बनता है।

गन्धक, फासफोरस ग्रादि के भी ऑक्सीजन में जलने से ग्रॉक्साइड बन जाते हैं।

वैज्ञानिकों ने तरह-तरह के प्रयोग करके ग्रॉक्सीजन को तैयार किया तथा उसके गुणों का पता भी लगाया। इस प्रकार बनाई गई ग्रॉक्सीजन को ग्रस्पताल, कारखानों, पहाड़ों, समुद्रों ग्रौर अन्तरिक्ष आदि में विभिन्न कामों के लिए प्रयोग किया जाता है। परन्तु ऑक्सीजन का सबसे ग्रधिक उपयोग समस्त जीवधारी—जीव-जन्तु और पेड़-पौधे ही करते हैं।

ग्रगले ग्रध्यायों में हम यह देखेंगे कि जीव किस प्रकार ग्रॉक्सीजन को ग्रपने शरीर में ले जाते हैं ग्रौर किस प्रकार ग्रॉक्सीजन जीव को शक्ति ग्रौर गर्मी प्रदान करती है ?

4 | मनुष्य और ऑक्सीजन

भोजन किए बिना तो हम कई दिन तक जीवित रह सकते हैं परन्तु वायु के बिना नहीं। वायु के बिना तो कुछ क्षण भी जीवित रहना कठिन हो जाता है। प्रत्येक जीवधारी प्रतिदिन, प्रतिपल साँस लेता रहता है। साँस द्वारा जीवों को कार्य करने की शक्ति मिलती है। वास्तव में हर कार्य के लिए शक्ति की आवश्यकता है और यह शक्ति गर्मी के रूप में ऑक्सीजन द्वारा हमारे शरीर में उत्पन्न होती रहती है। इसी गर्मी और शक्ति को उत्पन्न करने के लिए साँस की क्रिया आवश्यक है। साधारण भाषा में ऑक्सीजन को अन्दर ले जाने और कार्बन डाईक्साइड को बाहर निकालने की क्रिया को 'श्वसन' या 'स्वाँस क्रिया' कहते हैं।

वायु को फेफड़ों में ले जाने और निकालने के लिए भी हमारे शरीर की मशीन में विशेष प्रबन्ध किया गया है। फेफड़ों में वायु उसी समय जा सकती है, जब हमारे सीने के अन्दर कुछ जगह बढ़ जाती है। यह कार्य हमारी

पसलियों तथा एक बड़ी और चपटी माँसपेशी (डायफ्रम) की गति तथा वायुमण्डल के दबाव के कारण
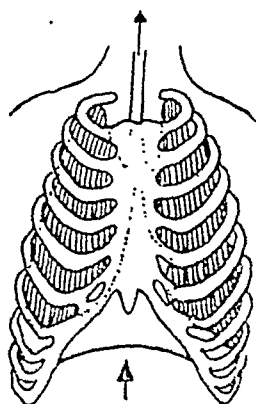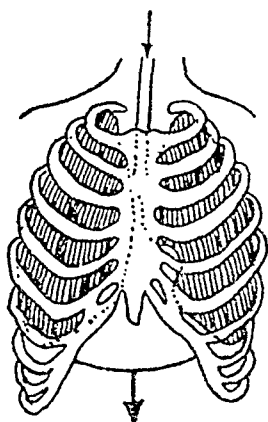
होता है। अपने सीने पर हाथ रखिए तथा गहरी साँस खींचिए, आपको पसलियाँ ऊपर उठती हुई तथा डायफ्रम नीचे को जाता हुआ महसूस होगा। डायफ्रम के नीचे की ओर फैल जाने तथा पसलियों के ऊपर उठने के कारण वायु फेफड़ों के अन्दर चली जाती है। इसके बाद डायफ्रम ऊपर उठ जाता है और पसलियाँ नीचे को हो जाती हैं और इस क्रिया से कार्बन-डाई-ऑक्साइड बाहर निकल जाती है।

साँस लेने और छोड़ने की क्रिया हम एक प्रयोग

द्वारा अच्छी तरह समझ सकते हैं। एक बिना तली की बोतल की डाट में एक ऐसी नली लगाई जो बोतल के अन्दर जकर दो हिस्सों में बँट जाती है। इन दोनों नलियों के सिरों पर एक-एक गुब्बारा बाँध दिया। बोतल की तली
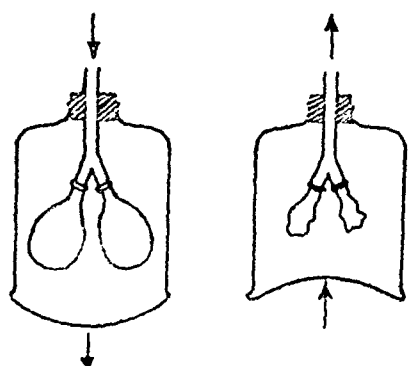
की जगह भी रबड़ बाँध दिया। जब रबड़ को नीचे खींचा जाता है, तो गुब्बारों में हवा भर जाती है। ठीक इसी प्रकार मनुष्य के शरीर में डायफ्रम नीचा हो जाने पर वायु फेफड़ों में भर जाती है। अब दूसरे चित्र की भाँति तली में लगी रबड़ को ऊपर की ओर दबाया गया, तो गुब्बारों में से हवा निकल गई तथा गुब्बारे पिचक गए। इसी भाँति हमारे शरीर में डायफ्रम जब ऊपर उठता है तो फेफड़ों में से कार्बन-डाई-ऑक्साइड बाहर निकल जाती है।

मनुष्य और बहुत-से जानवर नाक द्वारा साँस लेते हैं परन्तु पेड़-पौधे पत्तों द्वारा। प्रकृति ने मनुष्य के फेफड़ों तक शुद्ध वायु के पहुँचाने का भी विचित्र

प्रबन्ध किया है । हमारी नाक बालों और कुछ हड्डियों की बनावट के कारण एक सुन्दर छलनी का कार्य करती है ।

नाक के सिरे पर अन्दर बाल होते हैं । ये बाल वायु में मिले धूल-कणों आदि को अन्दर जाने से रोक लेते हैं । विजातीय पदार्थ—जैसे छोटा कीड़ा या कोई चने-जैसी छोटी वस्तु नाक की बनावट के कारण नाक के बाहरी हिस्से में ही रुक जाती है । इतने पर भी यदि कोई सूक्ष्म विजातीय पदार्थ नाक के भीतर वायु के साथ चला जाता है, तो हमारी नाक के अन्दर की झिल्ली अपनी गति द्वारा उसे बाहर निकाल देती है । छींक उसी समय आती है जब कोई विजातीय पदार्थ झिल्ली के संसर्ग में आ जाता है । नाक आवश्यकतानुसार ठंडी वायु को गर्म और गर्म वायु को ठण्डा बनाती है । यदि मुँह के द्वारा साँस लिया जाए तो कीटाणु, रेत, मिट्टी और गर्द हमारे फेफड़ों में पहुँचकर हमारे स्वास्थ्य को हानि पहुँचाते हैं, क्योंकि मुँह में इन पदार्थों को अन्दर जाने से रोकने के लिए कोई प्रबन्ध नहीं होता ।

जो हवा हम नाक द्वारा खींचते हैं वह नाक की

नली से होती हुई गले के पीछे श्वास नली में पहुँचती है। गले से नीचे चलकर श्वास नली दो भागों में बँट जाती है।
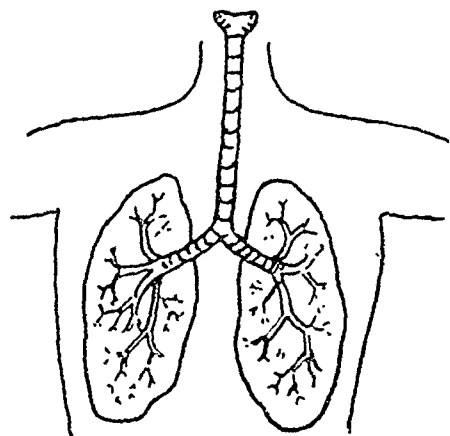
प्रत्येक शाखा को 'ब्रौंकस' कहते हैं। एक ब्रौंकस दाएँ और दूसरी बाएँ फेफड़े में जाती है। प्रत्येक ब्रौंकस फिर एक के बाद दूसरी अनेक छोटी-छोटी शाखाओं में विभाजित हो जाती है जिन्हें 'ब्रौंकिओलाई' कहते हैं। प्रत्येक ब्रौंकिओल के सिरे पर वायु कोषों के अत्यन्त बारीक-बारीक गुच्छे जुड़े रहते हैं। इन गुच्छों के बनने से फेफड़ों में गैस की अदला-बदली के लिए तल काफी बड़ा हो जाता है। वायु कोषों के चारों ओर ख़ून की बारीक-बारीक कोशिकाओं का जाल फैला रहता है। यदि इन कोशिकाओं को फैलाया जाए तो यह 150 वर्ग-गज़ का क्षेत्र घेर लेंगी। इन कोशिकाओं में ही वायु और ख़ून का सम्पर्क होता है।

जब वायु और ख़ून का सम्पर्क होता है, तभी ऑक्सीजन और कार्बन-डाई-ऑक्साइड गैस की अदला-

बदली होती है। रक्त के लाल कण (कार्पसिल्स) वायु की ऑक्सीजन को ले लेते हैं। इन लाल कणों में एक पदार्थ हैमोग्लोबिन होता है। इसका विशेष गुण यह है कि यह ऑक्सीजन से तुरन्त संयोग कर जाता है और ऑक्सीजन को चूस लेता है। और इस प्रकार ली हुई ऑक्सीजन रक्त के द्वारा शरीर के सभी भागों में पहुँचा दी जाती है। शरीर के विभिन्न अंगों में यही ऑक्सीजन ख़ून में मिले हुए भोजन को जलाकर शक्ति उत्पन्न करती है और साथ ही भोजन-पदार्थों के जलने से कार्बन-डाई-ऑक्साइड गैस और गर्मी भी पैदा होती है। शक्ति उत्पन्न करना ही श्वसन क्रिया का प्रमुख उद्देश्य है। यह रक्त ही शरीर के विभिन्न अंगों से कार्बन-डाई-ऑक्साइड इकट्ठी करके फेफड़ों तक लाता रहता है, जहाँ से यह साँस द्वारा बाहर निकाल दी जाती है।
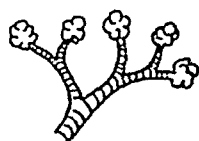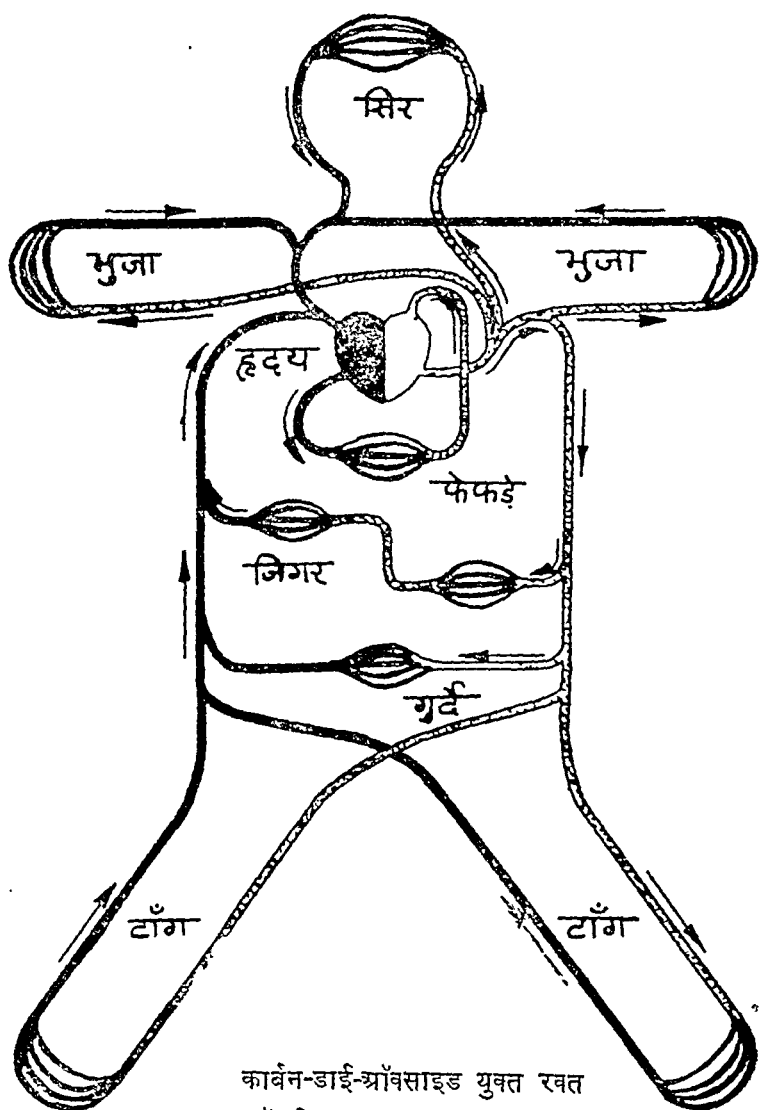
ऑक्सीजन मिला रक्त फेफड़ों से आकर हृदय के

बाएँ भाग में इकट्ठा हो जाता है और शरीर के अन्य भागों से कार्बन-डाई-ऑक्साइड मिला हुआ खून दाएँ भाग में। यह गन्दा खून फेफड़ों में जाकर साफ होता है। मनुष्य के शरीर में दो प्रकार की नाड़ियाँ होती हैं जिन्हें शिरा और धमनी कहते हैं। शिराएँ ऑक्सीजन-युक्त रक्त को हृदय से शरीर के प्रत्येक भाग तक पहुँचाती हैं तथा धमनियाँ शरीर के प्रत्येक भाग से गन्दा खून (अर्थात् कार्बन-डाई-ऑक्साइड युक्त) लाकर हृदय में इकट्ठा करती हैं। हृदय से यह खून फेफड़ों में भेजा जाता है। आपको अपनी खाल के नीचे जो नीली नाड़ियाँ दिखाई देती हैं, वह गन्दे खून को लाने वाली धमनियाँ होती हैं।

हृदय की माँसपेशियाँ सिकुड़ती हैं और फैलती रहती हैं, इसे हृदय का धड़कना कहते हैं। इस धड़कन द्वारा ही रक्त शरीर में घूमता रहता है।

एक स्वस्थ मनुष्य एक मिनट में 16 से 20 बार तक साँस लेता है। किन्तु बच्चा उतने ही समय में 30 बार साँस लेता है। मनुष्य जब व्यायाम या अधिक मेहनत का कार्य करता है तब उसे जल्दी-जल्दी साँस लेने की ज़रूरत होती है। इसका कारण यह है कि अधिक मेहनत का कार्य करते समय हमारे शरीर को

अधिक शक्ति की ज़रूरत पड़ती है। अधिक शक्ति केवल उसी समय पैदा होगी, जब रक्त में मिला हुआ भोजन का अंश अधिक मात्रा में तथा तीव्र गति से जलेगा। जलने की क्रिया का तेज़ या धीमा होना ऑक्सीजन की मात्रा पर निर्भर है। जितनी अधिक ऑक्सीजन होगी, जलने की क्रिया उतनी ही तेज़ी से होगी। इसलिए मनुष्य को भागते, दौड़ते, कसरत करते तथा कोई भारी काम करते समय तेज़ी से साँस लेना पड़ता है।

गहरा साँस लेना और भी अच्छा रहता है। गहरे साँस लेने से वायु की अधिक मात्रा हमारे फेफड़ों में पहुँचती है और उसी अनुपात में ऑक्सीजन रक्त में मिलकर सभी अंगों में पहुँचकर शरीर को शक्ति प्रदान करती है। साधारण मनुष्य के साँस लेने में 100 घन सेण्टीमीटर वायु अन्दर जाती है, परन्तु फेफड़ों में गुब्बारे की तरह कुछ लचक होती है और गहरी साँस लेने पर 300 घन सेण्टीमीटर तक वायु अन्दर जा सकती है। इसलिए आमतौर पर कसरत करने के बाद लोग खड़े हो जाते हैं और नाक से गहरी साँसें लेते हैं तथा मुँह से साँस छोड़ते हैं। इससे कार्बन-डाई-ऑक्साइड भी अधिक मात्रा में बाहर निकल

जाती है।

बहुत-से लोग सुबह तथा शाम के समय खुली जगहों पर टहलने जाते हैं। खुली जगहों पर बस्ती की अपेक्षा वायु में अधिक ऑक्सीजन होता है। वहाँ की साफ़ वायु में गहरी साँस लेने से मनुष्य के शरीर को शक्ति प्राप्त होती है।

साँस लेने की क्रिया में एक बात बड़े आश्चर्य की है। वायु में प्रमुख रूप से दो गैसें—ऑक्सीजन और नाइट्रोजन होती हैं। जब हम साँस लेते हैं तो वायु की यह दोनों ही गैसें हमारे फेफड़ों में पहुँचती हैं। परन्तु फेफड़ों में विद्यमान रक्त की लाल कणिकाएँ वायु में से केवल ऑक्सीजन को चूस लेती हैं और वायु का $\frac{4}{5}$ भाग अर्थात् नाइट्रोजन साँस बाहर निकालने में कार्बन-डाई ऑक्साइड आदि के साथ जैसी की तैसी ही निकल जाती है।

5 | जीव-जन्तु और ऑक्सीजन

मनुष्य अपनी नाक और फेफड़ों द्वारा वायु से ऑक्सीजन प्राप्त कर लेता है परन्तु मक्खी, मच्छर मछली आदि बहुत-से प्राणी ऐसे भी हैं जिनके नाक या फेफड़े नहीं होते। परन्तु फिर भी वह श्वसन की क्रिया करते हैं, वायु से ऑक्सीजन लेते हैं और कार्बन-डाई-ऑक्साइड छोड़ते हैं। प्रकृति ने इनके शरीर में वायु पहुँचाने का बहुत ही अच्छा प्रबन्ध किया है।

वर्षा ऋतु में आपने अनेक केंचुए पृथ्वी पर रेंगते हुए देखे होंगे। ये केंचुए मिट्टी खाते हैं और जीवित

रहते हैं। इन केंचुओं की खाल को चीरकर इनके शरीर में भरी हुई मिट्टी को देखा जा सकता है। ये केंचुए भी साँस लेते हैं। केंचुए के रक्तकोष उसकी खाल से सटे

हुए होते हैं। उसकी खाल बहुत पतली होती है तथा उसमें बड़े सूक्ष्म छिद्र होते हैं। इन छिद्रों और उसकी खाल में से होकर वायु केंचुए के शरीर में प्रवेश कर जाती है। यह वायु सीधी रक्त कोषों के सम्पर्क में आती है और उसके रक्त कोष में मौजूद लाल कण वायु में से ऑक्सीजन को चूस लेते हैं तथा अपने साथ लाई हुई कार्बन-डाई-ऑक्साइड निकाल देते हैं। मनुष्य के शरीर में ऑक्सीजन और कार्बन-डाई-ऑक्साइड की अदला-बदली फेफड़ों में होती है, परन्तु केंचुओं में यह क्रिया उसकी खाल से सटे हुए रक्त कोषों में होती है।

एक केंचुए को लेकर यदि हम खाली माचिस के बक्स में बन्द कर दें तो केंचुआ मर जाएगा। कारण यह है कि माचिस में ऑक्सीजन नहीं मिलेगी और वह साँस नहीं ले सकेगा।

बरसात के दिनों में इतनी मक्खियाँ पैदा हो जाती हैं कि इनकी भिन-भिनाहट से तबीयत ख़राब हो जाती है। ततैये भी गर्मियों के दिनों में काफ़ी घूमते-फिरते नज़र आते हैं। शहद की मक्खी को भी आप जानते ही होंगे। यह फलों और मिठाइयों पर उड़ती हुई दिखाई पड़ती
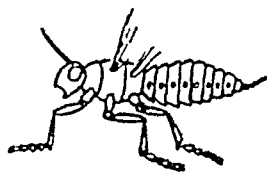
है। और ये मक्खी हमारे लिए अपने छत्ते में शहद इकट्ठा करती है। इन सब कीड़ों के भी फेफड़े नहीं होते, परन्तु श्वास की क्रिया इनमें भी होती है और यह भी हर समय साँस लेते रहते हैं।

इनके शरीर के दोनों तरफ़ छोटे-छोटे छिद्र होते हैं। इन्हीं छिद्रों में से होकर वायु अन्दर पहुँच जाती है। इन छिद्रों से सटी हुई हवा की नलियाँ होती हैं। इन नलियों के अन्दर चित्र की भाँति छल्लों की तह चढ़ी

होती है। बाहर से आई हुई वायु इन खुले हुए छल्लों में घुस जाती हैं। इन वायु की नलियों के चारों ओर इन जानवरों का ख़ून भरा रहता है। जब ये जानवर घूमते या चक्कर लगाते हैं तो वायु इनके शरीर में प्रवेश करती है और हवा की नलियों की दीवारें ऑक्सीजन को चूस लेती हैं और कार्बन-डाई-ऑक्साइड छोड़ देती हैं जो छिद्रों से होकर बाहर निकल जाती है। वायु के अन्दर जाने और कार्बन-डाई-ऑक्साइड के बाहर आने में जो आवाज़ होती है उसे ही इनका भिन-भिनाना कहा जाता है।

अगर आप एक गिलास में तिलचट्टे डालकर उस

गिलास को बन्द करके रख दें, थोड़े समय के पश्चात् इनका चलना-फिरना बंद हो जाएगा। अगर गिलास के ढक्कन को काफ़ी देर तक न खोला जाए, तो ये जानवर मर जाएँगे। अगर थोड़ा-सा चूने का पानी गिलास में डालें तो यह दूधिया हो जाएगा। इससे यह सिद्ध होता है कि तिलचट्टों ने गिलास

की वायु में मौजूद ऑक्सीजन ले ली और कार्बन-डाई-ऑक्साइड छोड़ दी और जब तिलचट्टों को ऑक्सीजन न मिली तो वे मर गए।
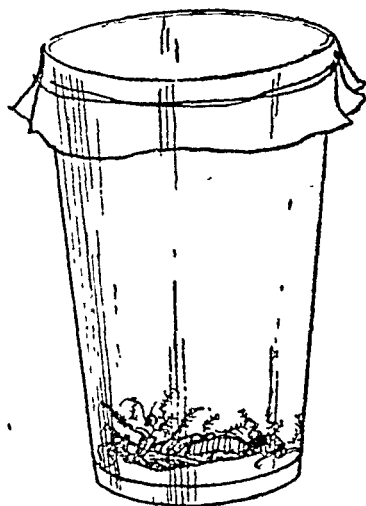
पृथ्वी पर तो जीव-जन्तु रहते ही हैं। परन्तु करोड़ों की संख्या में जीव समुद्र, नदी, तालाब और पोखर में भी पाए जाते हैं। यह हम देख चुके हैं कि अगर मनुष्य पानी के अन्दर अधिक समय रहना चाहे तो वह नहीं रह पाता। उसका दम घुटने लगता है, और वह मर जाता है।

परन्तु प्रकृति ने पानी में मछलियों के रहने के

लिए एक विशेष प्रबन्ध किया है। पानी में थोड़ी मात्रा में ऑक्सीजन घुली रहती है। मनुष्य के शरीर में ऐसा कोई अंग नहीं होता, जिसके द्वारा वह पानी में घुली ऑक्सीजन को ले सके, परन्तु इसके विपरीत मछलियों के शरीर में ऐसे अंग होते हैं जो पानी में घुली ऑक्सीजन को अलग निकाल कर इस्तेमाल कर लेते हैं। मछलियों के शरीर में भी मक्खी, ततैये और केंचुए आदि जीवों की तरह फेफड़े नहीं होते। मछलियाँ श्वसन की क्रिया अपने गलफड़ों द्वारा करती हैं। मछली के सिर के दोनों ओर दूज के चन्द्रमा की भाँति एक-एक दरार या लम्बा छेद होता है। ये गलफड़े के आवरण के पिछले किनारे होते हैं। ये छेद पिछली ओर एक दूसरे से प्रायः स्पर्श से करते हैं। उनके बीच में गर्दन का थोड़ा-सा भाग बचा रह जाता है। मछलियाँ अपने मुँह से पानी भीतर खींचती हैं। दरारों में से होकर यह पानी गलफड़ों के सम्पर्क में आता है। यदि मुँह को खोलकर देखा जाए तो गले में दोनों ओर पाँच दरारें दिखाई पड़ेंगी, इनके बीच में गलफड़े के पाँच मेहराब होते हैं। गलफड़ों के आवरण को हटाएँ तो देखने पर यह पता चलेगा कि वह भाग रक्त की तरह बहुत लाल होता है।

प्रत्येक गलफड़े में गले की दीवार में दरारों के बीच एक हड्डी से बनी मेहराब होती है, इसके साथ 'गलफड़ों की झिल्लियाँ' नामक पतली दीवारों की दो पंक्तियाँ होती हैं। इन झिल्लियों में रक्त की सूक्ष्म शिराएँ बहुत अधिक संख्या में होती हैं। यहीं
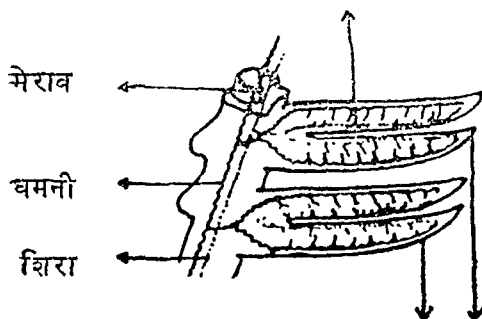
गलफड़े की केशिकाएँ

रक्त का जल से सम्पर्क होता है। शिराओं में मौजूद रक्त गलफड़े के निकट पहुँचे हुए पानी से सम्पर्क होने पर वही क्रिया करता है, जो हमारे फेफड़ों में होती है। हमारे फेफड़ों की शिराओं में विद्यमान रक्त की लाल कणिकाएँ आक्सीजन ग्रहण कर लेती हैं और कार्बन-डाई-ऑक्साइड को रक्त से निकालकर उस वायु में मिला देती हैं, यह गैस साँस बाहर निकलने पर बाहर आ जाती है। इसी तरह मछली के गलफड़े की शिराएँ इस तरह की

बनी हुई होती हैं कि अपनी दीवार द्वारा जल का सम्पर्क होने पर वायु की जगह जल में घुली हुई ऑक्सीजन की मात्रा का कुछ अंश ग्रहण कर लेती हैं और अपने अन्दर के रक्त में मिली कार्बन-डाई-ऑक्साइड बाहर निकालकर उस जल में मिला देती हैं।

गलफड़ों में हड्डियों से बनी मेहराब में अँगुली की तरह नन्हें उभार से होते हैं। ये उभार गले की तरफ़ को होते हैं। इन उभारों के कारण गलफड़े की झिल्लियों में खाद्य-पदार्थ नहीं जा पाते तथा ये
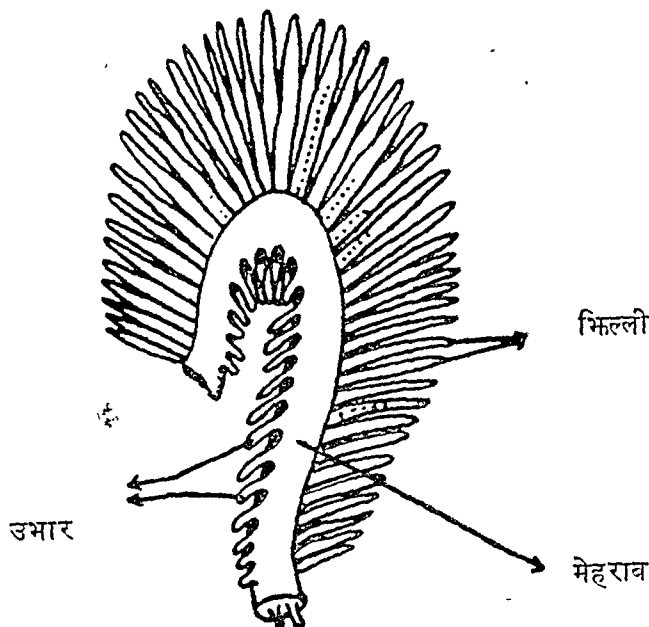
गलफड़े का मेहराब

उभार पानी के निर्बाध संचालन के लिए उसे मेहराबों से अलग रखने में सहायता देते हैं।

श्वास क्रिया के लिए हवा की जगह मछली के मुँह में पानी ही प्रवेश करता है। इसके बाद क्षण-भर के लिए मुँह का बाहरी द्वार बन्द हो जाता है और दबाव पड़ने के कारण पानी गलफड़ों की दरारों द्वारा झिल्लियों के ऊपर पहुँचता है और गलफड़ों के आवरण के नीचे से बाहर निकल जाता है। मछलियों के आगे की ओर चलते रहने से यह क्रिया होती रहती है।
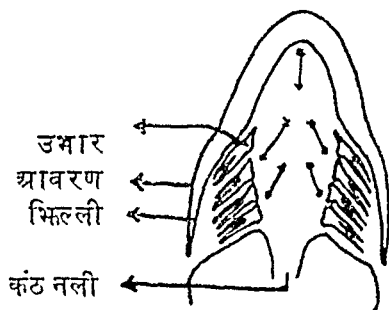
मछली की श्वास क्रिया

भिन्न-भिन्न मछलियों के गलफड़े भिन्न-भिन्न स्थानों पर होते हैं।
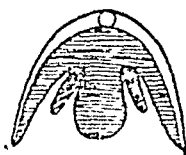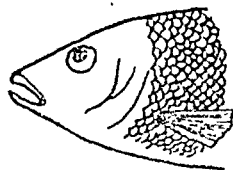
गलफड़े

घोंघा मछली के गलफड़े खाल की तह में छिपे होते है। यह मछली भी इन्हीं गलफड़ों के द्वारा साँस लेती हैं। एक अन्य प्रकार की मछली में गलफड़े उसकी टाँगों पर होते हैं।

ह्वेल मछली का नाम भी शायद आपने सुना हो? यह समुद्र में ही मिलती है और यह सैकड़ों गज़ लम्बी तथा सैकड़ों मन वज़न वाली मछली होती है। पुराने ज़माने में जब समुद्र में जहाज़ वायु की सहायता से चलते थे, ह्वेल मछली एक ही टक्कर में माल-भरे जहाज़ को उलट देती थी और हज़ारों रुपयों का नुकसान हो जाता था।

इसे पानी में रहने के कारण ही मछली के नाम से पुकारते हैं। परन्तु ह्वेल के और मछलियों की तरह गलफड़े नहीं होते। वास्तव में ह्वेल मछली जाति में नहीं है। उसके भी मनुष्य की भाँति फेफड़े होते हैं।

यह और मछलियों से भिन्न हैं। जब भी ह्वेल मछली को साँस लेने की आवश्यकता होती है तो वह साँस लेने के लिए पानी की सतह पर आ जाती है। ह्वेल मछली के फेफड़े बहुत बड़े होते हैं। यह एक ही बार साँस लेकर अपने फेफड़ों में इतनी वायु भर लेती है कि वह पानी के अन्दर 40 मिनट से भी अधिक रह सकती है और उसका काम चलता रहता है।

जब ह्वेल को फिर साँस लेने की आवश्यकता
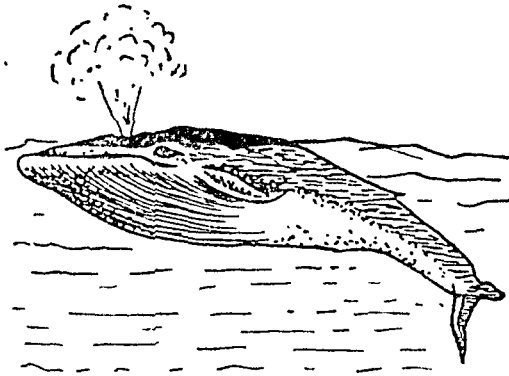
समुद्र तल पर आकर ह्वेल साँस छोड़ रही है।

होती है तब वह फिर समुद्र की तह पर आती है और अपने फेफड़ों की कार्बन-डाई-ऑक्साइड अपनी नाक द्वारा इतनी शक्ति से निकालती है कि दूर से ऐसा प्रतीत होता है जैसे समुद्र में कोई फव्वारा चल रहा हो।

अमीबा
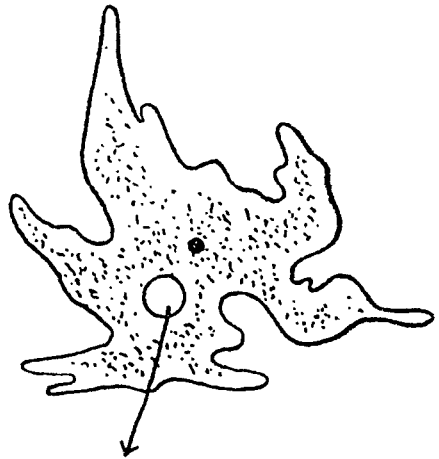
अमीबा तथा एक कोशिका वाले अन्य छोटे-छोटे प्राणियों के शरीर में वायु का एक छिद्र-सा बना रहता है और उस छिद्र में मौजूद वायु से यह जानवर ऑक्सीजन लेते रहते हैं। बहुत-से दूसरे जानवर वायु को अपनी त्वचा द्वारा ही चूस लेते हैं।

तालाबों में से बच्चे अक्सर घोंघे उठा लाते हैं। यह घोंघा एक जानवर का ऊपरी खोल होता है। इस खोल के अन्दर ही घोंघा रहता है। इसमें भी साँस लेने के लिए एक छिद्र होता है, जिसमें से होकर वायु उसके शरीर में आती जाती रहती है।
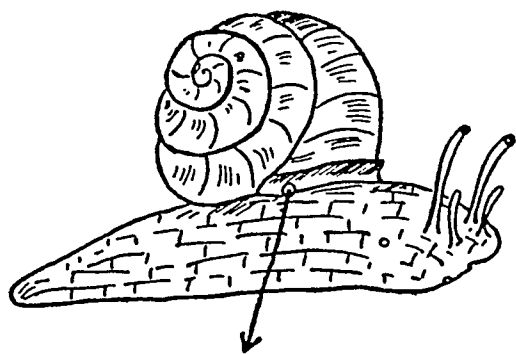
वायुद्वार

बरसात के मौसम में आपने मेंढक के टर्राने की आवाज़ अवश्य सुनी होगी। मेंढक में मनुष्य की भाँति फेफड़े होते हैं और नाक के स्थान पर दोनों आँखों के बीच एक नथना होता है। वह वायु को पहले अपने मुँह में भर लेता है। उसके बाद मुँह और नथने को बन्द

करके वायु को फेफड़ों में धकेल देता है। यदि आप किसी मेंढक को ध्यान से देखें तो यह पाएँगे कि उसके निचले जबड़े की खाल ऊपर-नीचे होती रहती है। यही क्रिया वायु को अन्दर धकेलती है और इससे मेंढक के साँस लेने का पता चलता है। यदि किसी मेंढक का मुँह काफ़ी देर तक खुला ही रहने दिया जाय तो वह साँस लेने की क्रिया नहीं कर पाएगा और उसका दम घुट जायगा। सर्दी के मौसम में मेंढक ऐसी ज़मीन में घुस जाते हैं, जहाँ नमी होती है। सर्दियों भर सोते हैं और साँस की क्रिया नहीं के बराबर करते हैं। इस अवधि में मेंढक न चलते-फिरते हैं और न ही कोई दूसरी क्रियाएँ करते हैं, इसलिए इन्हें बहुत कम ऑक्सीजन की आवश्यकता होती है।

ऑक्सीजन प्रत्येक प्राणी के लिए आवश्यक है चाहे वह अमीबा जैसा सूक्ष्म हो या हाथी और ह्वेल-जैसा विशालकाय। इन प्राणियों में श्वसन की क्रिया भिन्न-भिन्न ढंगों द्वारा तो होती है, परन्तु सभी प्राणियों में शक्ति और गर्मी उनके भोजन और ऑक्सीजन की क्रिया द्वारा ही पैदा होती है।

6 | पेड़-पौधे और ऑक्सीजन

मनुष्य तथा दूसरे सभी जानवर कुछ न कुछ कार्य करते ही रहते हैं। जंगली जानवर अपने भोजन की तलाश में एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमते रहते हैं। मछलियाँ इत्यादि भोजन के लिए जल में इधर-उधर घूमती-फिरती हैं। प्रत्येक जीव को कार्य करने के लिए शक्ति की आवश्यकता होती है। यह शक्ति उसे भोजन और ऑक्सीजन से प्राप्त होती है। पेड़-पौधे भी जानवरों की भाँति ही जीव हैं। वैसे तो पेड़-पौधे एक ही स्थान पर खड़े रहते हैं, चलते-फिरते नहीं, फिर भी पेड़-पौधे अन्य जीव-जन्तुओं की भाँति ही भोजन करते हैं, साँस लेते हैं और बढ़ते हैं। एक छोटे-से बीज से पौधे और पेड़ पैदा हो जाते हैं। यदि पेड़-पौधों को भोजन और ऑक्सीजन न मिले तो यह भी मर जाते हैं, जिसे हम पेड़-पौधों का सूख जाना कहते हैं। यह अपना भोजन अपनी जड़ों द्वारा पृथ्वी से तथा सूर्य के प्रकाश में वायु से प्राप्त करते हैं। साथ ही साथ पेड़-

पौधे प्रतिपल मनुष्य तथा जीव-जन्तुओं की भाँति ही श्वसन क्रिया करते रहते हैं। वायु की अनुपस्थिति में पौधों का भी दम घुटने लगता है और वे मुर्झा जाते हैं।

एक पौधे की ताज़ी पत्तियाँ लगीं तीन-चार टहनियाँ लीं और एक चौड़े मुँह की बोतल में वे टहनियाँ डाल दीं। बोतल की डॉट लगाकर उसे किसी अँधेरे स्थान में रख दिया, कुछ देर बाद वे पत्तियाँ मुर्झा जाएँगी। यदि उस बोतल में चूने का पानी डालें तो वह दूधिया हो जायगा। इस प्रयोग से यह सिद्ध होता है कि इन पत्तों ने बोतल में से ऑक्सीजन लेकर कार्बन-डाई-ऑक्साइड छोड़ दी, अर्थात् पत्तों ने भी साँस ली।
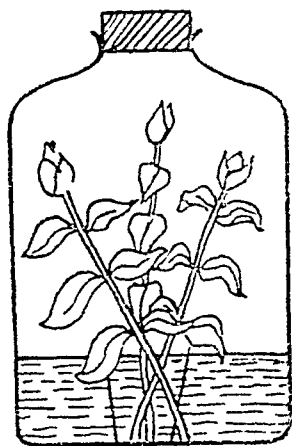
आओ एक दूसरा प्रयोग करें। एक बोतल लें और उसकी तली में थोड़ा-सा लकड़ी का गीला बुरादा डाल दें तथा उसमें चने और मटर के बीज डाल दें।

तीन-चार दिन के बाद हम यह देखेंगे कि वे बीज फूट रहे हैं। फिर उस बोतल के मुँह पर मोटा कागज़ बाँध दें, जिससे उनके अन्दर हवा न जा सके तथा उस बोतल को रात-भर के लिए छोड़ दें। सुबह उस बोतल का मुँह खोलकर उसमें चूने के पानी में भीगी एक शीशे की छड़ डालें, तो उसका रंग दूधिया हो जायगा। इस प्रयोग से भी यही सिद्ध होता है कि बीजों को भी
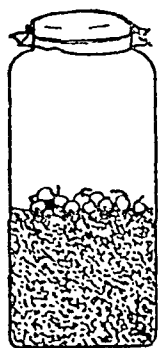
बोए जाने पर अंकुरण के लिए ऑक्सीजन की आवश्यकता है। यदि इन बीजों को बन्द बोतल में दो दिन रहने दिया जाय तो हम यह देखेंगे कि उनका अंकुरण रुक गया है, अर्थात् ऑक्सीजन न मिलने की अवस्था में वह बीज मर गए और नए पौधों को जन्म न दे सके।

उपरोक्त प्रयोग एक सरल रीति से भी किया जा सकता है। एक बोतल में साधारण जल भरकर उसमें चने के दाने डाल दिए। एक दूसरी बोतल में पानी को उबालकर भरा। जब आप पानी को उबालेंगे तो उसमें से आपको कुछ बुलबुले उठते नज़र आएँगे। दूसरी बोतल में भी चने के दाने डाल दिए।

दो-तीन दिन के बाद उन बोतलों को देखिए। पहली बोतल में पड़े हुए चने के दाने फूटने लगे हैं, परन्तु दूसरी बोतल के चने नहीं फूटे। इसका कारण यह है कि पहली बोतल के जल में कुछ वायु घुली हुई थी और उसमें
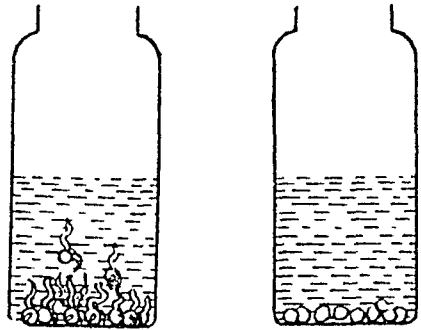
पड़े हुए दानों को उस वायु में से ऑक्सीजन प्राप्त हो गई, परन्तु दूसरी बोतल के पानी को उबालकर उसमें से वायु निकाल दी गई थी। इसलिए इन चनों को ऑक्सीजन न मिली और उनमें जीवन का संचार न हो सका।

आप किसी भी पौधे के गमले को किसी आलमारी में बन्द कर दें तथा एक खुली प्याली में चूने का पानी भरकर उसी के पास रख दें। एक दूसरी प्याली में भी चूने का पानी भरकर उस आलमारी के बाहर रख दें। चार-पाँच घण्टों के पश्चात् दोनों प्यालियों में भरे पानी के रंग को मिलाइए। आप देखेंगे कि जो प्याली आलमारी में रखी थी, उसका

जल अधिक दूधिया हो गया है।

ऊपर के सभी प्रयोगों से यही निर्विवाद सिद्ध हो जाता है कि मनुष्य तथा अन्य सभी जानवरों की भाँति पेड़-पौधों में भी श्वसन किया अवश्य ही होती है। पेड़-पौधे भी ऑक्सीजन लेते हैं और कार्बन-डाई-ऑक्साइड निकालते हैं।

लेकिन आश्चर्य की बात यह है कि पेड़-पौधों में नाक और फेफड़े तो होते नहीं, फिर पौधे साँस किस प्रकार लेते हैं। जिस प्रकार प्रकृति ने कीड़े-मकोड़े तथा मछलियों के शरीर में साँस लेने का प्रबन्ध किया है, उसी प्रकार पौधों में भी प्रकृति ने साँस लेने का मार्ग बना दिया है।
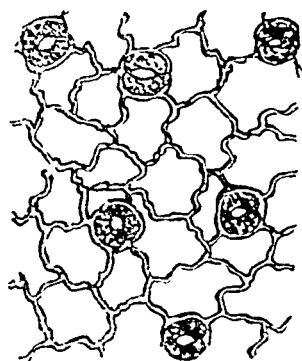
पौधों का जो भाग पृथ्वी के ऊपर रहता है, उन सभी भागों में छोटे-छोटे छिद्र होते हैं। तने, टहनी, शाखा और पत्ती—सभी में यह छोटे-छोटे छिद्र होते हैं। परन्तु यह छिद्र बहुत ही छोटे होते हैं तथा हमें यह दिखाई नहीं देते। विशेष-रूप से इन छिद्रों की सबसे

वायुद्वार

अधिक संख्या पेड़ या पौधे की पत्तियों के नीचे वाली सतह पर होती है। यदि किसी पत्ती को खुर्दबीन में देखा जायगा तो उसमें थोड़ी-सी दूरी में भी हज़ारों छिद्र नज़र आएँगे। इन छिद्रों को स्टोमैटा (Stomata) कहते हैं। इन छिद्रों की संख्या प्रत्येक पौधे में भिन्न-भिन्न होती है। किसी-किसी पत्ते पर तो इन छिद्रों की संख्या लाखों तक पहुँच जाती है।

इन्हीं छोटे-छोटे छिद्रों में से होकर वायु सारे पत्ते में पहुँच जाती है, क्योंकि वायु हर स्थान पर मौजूद रहती है और छोटे-से-छोटे स्थान में भी प्रवेश कर जाती है। यदि किसी पत्ते को काटकर एक खुर्दबीन में देखें तो स्टोमैटा अर्थात् वायुद्वार स्पष्ट नज़र आएँगे। चित्र में दो छिद्र नज़र पड़ रहे हैं। इन छिद्रों के पीछे के खाली स्थान में हवा भर जाती है और इन्हीं वायु-कोषों में से पेड़-पौधे ऑक्सीजन ग्रहण कर कार्बन-डाई-ऑक्साइड छोड़ देते हैं। वायु ले जाने वाले ये छिद्र पेड़-पौधों के तनों तथा टहनियों पर भी होते हैं। पेड़-पौधों में साँस लेने
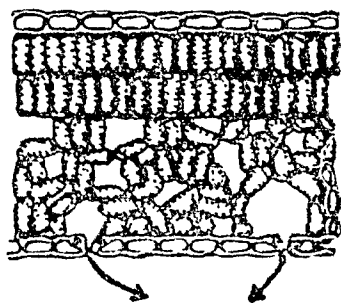
वायुद्वार

की यह क्रिया चौबीसों घंटे अर्थात् प्रतिपल होती रहती है।

लेकिन पेड़-पौधों में दिन के समय सूर्य के प्रकाश में एक और क्रिया भी होती है, उसे उनकी श्वसन क्रिया नहीं समझना चाहिए। अधिकतर पौधों के पत्तों का रंग हरा होता है, कुछ ही पौधे जैसे आकाश-बेल तथा
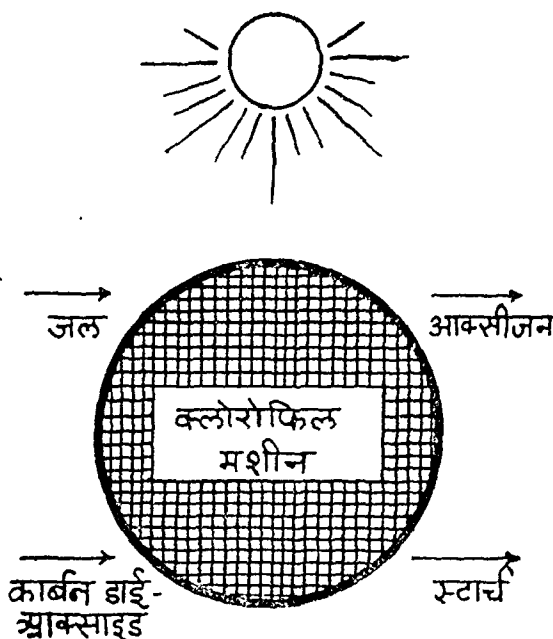
फंगस आदि को छोड़ सभी पत्तों में हरियाली होती है। यह हरियाली एक पदार्थ के कारण होती है, जिसे

क्लोरोफिल कहते हैं। सूरज की रोशनी में इसी हरे क्लोरोफिल की सहायता से पौधा हवा से कार्बन-डाई-ऑक्साइड चूसता है और अपनी जड़ों द्वारा भूमि से जल खींचता है। सूर्य के प्रकाश से कार्बन-डाई-ऑक्साइड टूट जाती है, उसमें से निकली हुई कार्बन पानी से मिलकर स्टार्च बन जाती है और ऑक्सीजन बाहर निकल जाती है। पौधे जड़ द्वारा पानी के साथ कुछ लवण भी चूस लेते हैं। स्टार्च और ये लवण केवल पेड़-पौधों को ही भोजन प्रदान नहीं करते अपितु मनुष्य तथा जानवर भी पेड़-पौधोंको अपना भोजन बना लेते हैं। परन्तु यह क्रिया केवल सूर्य के प्रकाश और पत्ते में हरियाली की उपस्थित में ही होती है। कुछ पौधे—फुई इत्यादि ऐसे भी हैं जिनमें क्लोरोफिल नहीं होता, इसलिए वे अपना भोजन स्वयं नहीं बना पाते। ऐसे पौधे अपना भोजन दूसरे जीवित अथवा मृत पदार्थों से प्राप्त करते हैं।

पौधों में सूरज की रोशनी में होने वाली यह क्रिया—अर्थात् कार्बन-डाई-ऑक्साइड लेकर ऑक्सीजन निकाल देने वाली—मनुष्य तथा अन्य जीवधारियों के लिए बहुत ही लाभकारी है।

ऑक्सीजन चक्र

आप यह अनुमान लगाइए कि घरों में, बसों व मोटरों में, कारखानों में, रेल के इंजिनों में कितना कोयला, लकड़ी और तेल रात-दिन जलता रहता है ? ये वस्तुएँ जलने में वायुमण्डल में मौजूद ऑक्सीजन का प्रयोग कर कार्बन-डाई-ऑक्साइड छोड़ देती हैं। इतना ही नहीं, मनुष्य, जानवर, कीड़े-मकोड़े, पेड़ और पौधे भी चौबीसों घंटे साँस लेते रहते हैं अर्थात् ये जीव भी ऑक्सीजन लेकर कार्बन-डाई-ऑक्साइड छोड़ते रहते हैं। लोहे में जंग लगने तथा खाद्य-पदार्थों के सड़ने में भी ऑक्सीजन काम में आती रहती है। ये सब क्रियाएँ लाखों वर्षों से हो रही हैं अर्थात् ऑक्सीजन का उपयोग लाखों वर्षों से होता आ रहा है, परन्तु आश्चर्य की बात यह है कि ऑक्सीजन की मात्रा में कोई भी अन्तर नहीं आता और न ही वायुमण्डल में कार्बन-डाई-ऑक्साइड की मात्रा बढ़ती है। वायु में ऑक्सीजन की मात्रा ज्यों की त्यों ही बनी रहती है। यह कैसे ?

इन सब क्रियाओं में निकली हुई कार्बन-डाई-ऑक्साइड की मात्रा को कम करने तथा ऑक्सीजन की मात्रा बढ़ाने में ही पेड़-पौधे बहुत सहायता करते हैं। पौधे की हरियाली अर्थात् क्लोरोफिल सूरज की रोशनी में वायु

में से कार्बन-डाई ऑक्साइड को चूसती रहती है और ऑक्सीजन छोड़ती रहती है।

काँच की एक नाद में पानी भर लिया, तथा इसमें थोड़ी-सी कार्बन-डाई-ऑक्साइड गैस घोल दी। फिर कुछ हरे पत्तों को इस नॉद में रखकर उन्हें एक उल्टे कीप द्वारा ढंक दिया। कीप की नली के ऊपर पानी से भरी हुई एक परख-नली उल्टी करके रख दी। इसे कुछ घण्टों के लिए धूप में रखा रहने दिया। कुछ समय बाद हम यह देखेंगे कि परख-नली का पानी धीरे-धीरे उतर रहा है और पत्तों से उठते हुए गैस के बुलबुले उसका स्थान लेते जा रहे हैं। परख-नली जब पूरी ही गैस से भर गई अर्थात् जब उसमें से पानी उतर गया तो उस परख-नली के सिरे पर अँगूठा लगाकर वहाँ से हटा लिया। यदि इस परख-नली के सिरे पर एक सुलगती हुई तीली लाई जाए तो वह तेज़ी से भड़क उठेगी, इससे यह सिद्ध होता है कि पौधे के पत्तों ने सूरज की रोशनी में पानी
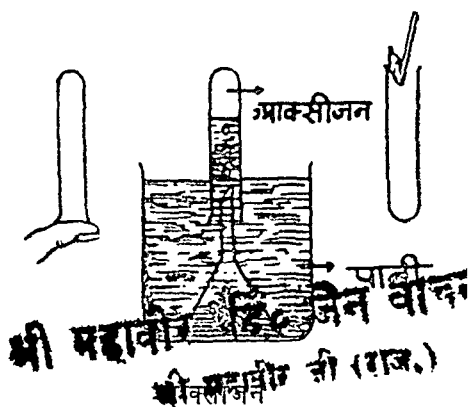
में घुली कार्बन-डाई-आॅक्साइड ले ली और आॅक्सीजन छोड़ दी। पौधों की इस क्रिया को 'फोटो सिंथैसिस' (Photo-synthesis) कहते हैं।

साधारण रूप में वायुमण्डल में कार्बन-डाई-आॅक्साइड की मात्रा केवल 0·3% ही है। कुछ स्थानों पर इसकी मात्रा अधिक भी होती है—जैसे बड़े-बड़े शहरों में तथा फैक्टरियों के पास। अन्य स्थानों पर कार्बन-डाई-आॅक्साइड कम मात्रा में पाई जाती है। खुले हुए खेतों, बाग़ों और पार्कों में, जंगलों में इसकी मात्रा बहुत ही कम होती है। क्यों?

इसी कारण लोग सुबह-शाम पार्क, खेत, बाग़ आदि में घूमने के लिए जाते हैं तथा देहात के लोग शहरियों की अपेक्षा अधिक स्वस्थ होते हैं।

पौधे दिन के समय वायु से कार्बन-डाई-आॅक्साइड लेकर 'फोटो सिंथैसिस' की क्रिया करते हैं। यदि वायु में कार्बन-डाई-आॅक्साइड की मात्रा अधिक होती है तो फोटो सिंथैसिस की क्रिया भी उतनी ही तीव्र हो जाती है। परन्तु वह क्रिया केवल सूरज की रोशनी में ही होती है, इसलिए दिन में पेड़-पौधों के पास आॅक्सीजन की मात्रा अधिक होती है। परन्तु जब सूरज छिप जाता है तो पौधों में यह क्रिया रुक जाती

है, उस समय पौधा केवल साँस लेने की ही क्रिया करता रहता है अर्थात् ऑक्सीजन लेकर कार्बन-डाई-ऑक्साइड छोड़ता है। आपने कभी अपने गाँव में यह सुना होगा कि रात को अमुक व्यक्ति पेड़ के नीचे सो रहा था और उसका गला भूत ने दबा दिया। वह भूत कोई और नहीं, बल्कि कार्बन-डाई-ऑक्साइड ही थी। रात में फोटो सिंथैसिस की क्रिया तो होती नहीं, इसलिए पेड़ कार्बन-डाई-ऑक्साइड छोड़ते हैं और मनुष्य को साँस लेने में कठिनाई होती है, उसका दम घुटता है तो वह अपने अन्धविश्वासों के कारण यह समझ बैठता है कि कोई भूत उसका गला दबा रहा है। परन्तु यह घटना उसी समय होती है जबकि वायु बिलकुल बन्द होती है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि मनुष्य, कीड़े-मकोड़े, जीव-जन्तु, पेड़-पौधे साँस लेने में ऑक्सीजन लेकर उसका उपयोग करते हैं और कार्बन-डाई-ऑक्साइड वायुमण्डल में छोड़ते रहते हैं। भट्टियों, अंगीठियों तथा इंजिनों में तरह-तरह का ईंधन जलता है, तो ऑक्सीजन काम में आती है और कार्बन-डाई-ऑक्साइड निकलती है। परन्तु साँस छोड़ने और जलने की क्रिया में निकली हुई कार्बन-डाई-ऑक्साइड को

पेड़-पौधे सूरज की रोशनी में सोखते रहते हैं और उसकी जगह ऑक्सीजन वायुमण्डल में छोड़ते रहते हैं
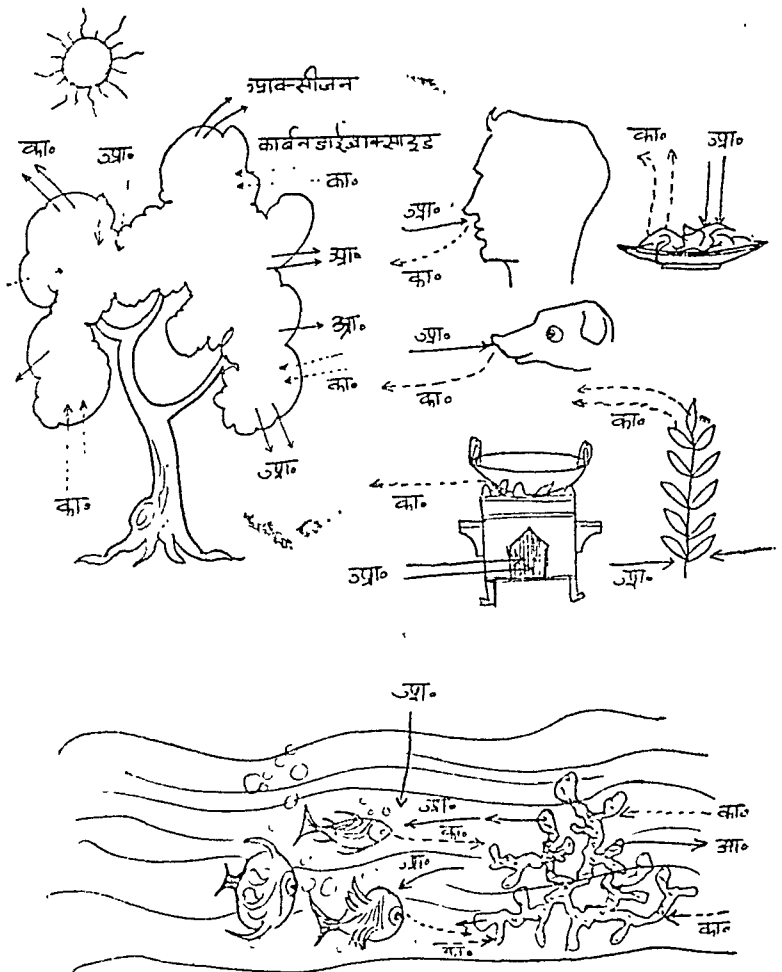
ऑक्सीजन चक्र

इस प्रकार पेड़-पौधे वायुमण्डल में ऑक्सीजन की मात्रा को संतुलित रखते हैं तथा वायुमण्डल में कार्बन-डाई-ऑक्साइड की मात्रा को नहीं बढ़ने देते।

देखा आपने, प्रकृति ने मनुष्य तथा अन्य जीव के लिए उनके जीवन के आधार—ऑक्सीजन की मात्रा—को संतुलित रखने के लिए कितना विचित्र प्रबन्ध किया है ?

7 | स्वास्थ्य और ऑक्सीजन

शरीर से अनावश्यक पदार्थों—जैसे कार्बन-डाई-ऑक्साइड गैस, पसीना इत्यादि—को निकालने के लिए साँस की क्रिया आवश्यक है। साँस तो प्रत्येक जीव-जन्तु अपने-अपने ढंग से लेता है। मनुष्य और जानवर नाक द्वारा, पेड़-पौधे पत्तों और टहनियों द्वारा, मछली इत्यादि गिलस द्वारा तथा अमीबा एक छोटे सुराख द्वारा साँस लेता है।

मनुष्य को नाक से ही साँस लेना चाहिए। नाक की बनावट बाल, हड्डियाँ और झिल्लियों के होने के कारण इस प्रकार की है कि वह एक छलनी का कार्य करती है। इसमें वायु छनकर फेफड़ों में पहुँचती है। दूसरे नाक से साँस लेने की क्रिया में वायु को फेफड़ों तक पहुँचने के लिए एक छोटे रास्ते से गुज़रना पड़ता है, जिसके कारण शरीर की आवश्यकतानुसार बाहर की ठंडी वायु गर्म और गर्म वायु ठंडी बन जाती है। इसलिए हमें कभी भी मुँह से साँस नहीं लेना चाहिए,

क्योंकि मुँह में वायुकण आदि अन्दर चले जाने से रोकने के लिए कोई प्रबन्ध नहीं होता। मुँह से साँस लेने में हमेशा यह खतरा रहता है कि कहीं धूल तथा कीटाणु वायु के साथ-साथ हमारे शरीर में प्रवेश न कर जाएँ।

साँस लेने का यह तात्पर्य नहीं कि मनुष्य किसी भी प्रकार के वायुमण्डल में साँस की क्रिया करता रहे और उसका स्वास्थ्य ठीक रहे। स्वास्थ्य को ठीक रखने के लिए मनुष्य को शुद्ध वायु में साँस लेना चाहिए। इसीलिए ही कहा जाता है कि सुबह जबकि वायु में ऑक्सीजन की मात्रा अधिक होती है गहरा साँस लेना चाहिए। गहरा साँस लेने से हमारे शरीर में अधिक वायु प्रवेश करती है, तथा उसमें ऑक्सीजन की भी मात्रा अधिक पहुँच जाती है जिसके कारण अधिक शक्ति पैदा होती है और थकान महसूस नहीं होती।

शरीर को सुन्दर, बलवान और स्वस्थ रखने के लिए केवल ठीक प्रकार से साँस लेना ही नहीं आना चाहिए, बल्कि मनुष्य को ठीक प्रकार से चलना, बैठना और सोना भी आना चाहिए।

चलते समय सीना तानकर और सीधा करके चलना चाहिए। बहुत से लोगों को कंधे झुकाकर और सिर को नीचा करके चलने की आदत होती है। अगर

वह इस आदत को न छोड़ें तो उनकी कमर में कूबड़ निकल आता है। झुककर चलने से शरीर के अन्दर के अंगों पर दबाव पड़ता है। पसलियाँ पूरी तरह से ऊपर नहीं उठ पातीं और हमारे सीने में वायु के लिए कम स्थान कम रह पाता है। फेफड़े ठीक प्रकार से साँस नहीं ले सकते, जिसके कारण ऑक्सीजन ठीक रूप से शरीर में प्रवेश नहीं कर सकती। इसका परिणाम यह

सही ढंग गलत ढंग

होता है कि उसका स्वास्थ्य दिन प्रतिदिन बिगड़ता रहता है और उसे अनेक प्रकार की बीमारियाँ घेर लेती हैं।

वैसे तो सभी किसी-न-किसी प्रकार से कुर्सी पर बैठ जाते हैं, परन्तु यदि कुर्सी पर ठीक तरह से न बैठा जाए तो इन लोगों की भी कमर झुकने लगती है। कुर्सी पर सीधा तनकर बैठना चाहिए और पीठ पीछे की ओर लगी होनी चाहिए।

सही ढंग

पढ़ते और लिखते समय किताब और काग़ज़ कुछ फासले पर होना चाहिए, झुककर पढ़ने से फेफड़ों पर दबाव पड़ता है।

आपने अक्सर यह कहते हुए सुना होगा कि सोते समय मुँह ढंका हुआ नहीं होना चाहिए, और खिड़की और दरवाज़े खुले रहने चाहिएँ। इसका भी एक विशेष कारण है। अगर मुँह ढंककर सोया जाए तो साँस से निकली कार्बन-डाई-ऑक्साइड गैस

रज़ाई या चादर के अन्दर ही रह जाती है। बाहर की ऑक्सीजन-युक्त ताज़ी हवा रज़ाई के कारण मनुष्य तक नहीं पहुँच पाती। मनुष्य के बार-बार साँस लेने की क्रिया से कार्बन-डाई-ऑक्साइड की मात्रा अधिक हो जाती है। इसके कारण सिर दर्द, जी मिचलाना इत्यादि रोग होने लगते हैं।

गलत ढंग

केवल मुँह को खुला रखकर सोना ही पर्याप्त नहीं है। सोते समय कमरे के सभी खिड़की और दरवाज़े भी खुले होने चाहिएँ। यदि कमरे के दरवाज़े और खिड़कियाँ बन्द रहती हैं, तो कमरे में शुद्ध वायु नहीं आ पाती और कमरे में सोए हुए व्यक्तियों की श्वसन क्रिया के कारण कार्बन-डाई-ऑक्साइड की मात्रा बढ़ जाती है और जब वह लोग सोकर उठते हैं तो उन्हें

सिर भारी होने की शिकायत होती है। इसलिए यह आवश्यक है कि कमरे में ताज़ी हवा आने तथा कार्बन-डाई-ऑक्साइड बाहर निकालने का ठीक से प्रबन्ध होना चाहिए ।

संवातन (वैन्टीलेशन)

आपने यह नोट किया होगा कि रोशनदान (वैन्टीलेटर) आम तौर पर कमरे के ऊपरी भाग में अर्थात् छत के साथ या दरवाज़े के ऊपर होते हैं । कभी आपने इसका कारण भी सोचा है ? जब हम साँस छोड़ते हैं तो बाहर निकलने वाली वायु गर्म होती है और गर्म वायु ताज़ी वायु की अपेक्षा हल्की होती है । हल्की होने के कारण वायु ऊपर की ओर जाती है । रोशनदान इस कारण ही ऊपर बनाए जाते हैं ताकि उनमें से ऊपर पहुँची हुई गर्म वायु बाहर की ओर निकल सके।

काँच का एक छोटा-सा बक्स लीजिए जैसा चित्र में दिखाया गया है । इसमें दो चिमनियाँ लगी हुई हैं एक चिमनी के नीचे जलती हुई मोमबत्ती रखी है । दूसरी चिमनी के मुँह पर यदि हम जलती हुई धूप या अगरबत्ती लाते हैं तो उसका धुआँ उस चिमनी में से होकर बक्स में जाएगा और दूसरी चिमनी से बाहर

की ओर निकलता हुआ दिखाई देगा। धुएँ का एक चिमनी से प्रवेश करना तथा जिधर मोमबत्ती जल
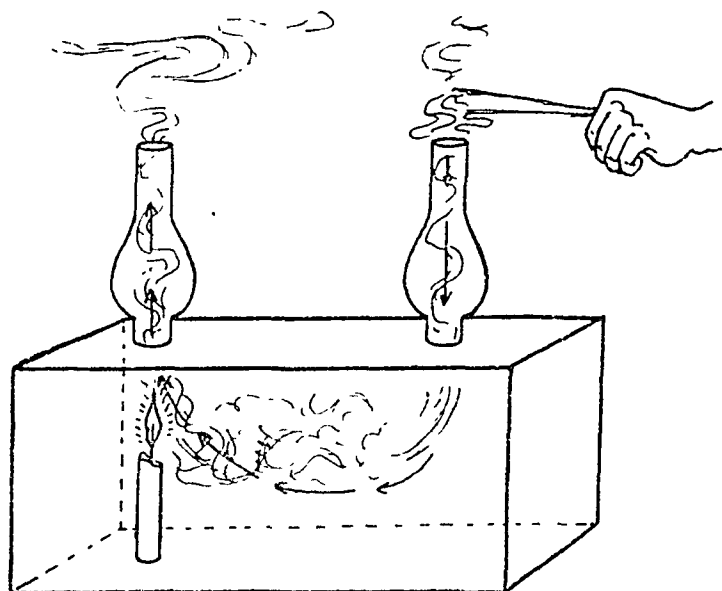
रही है, उस चिमनी से धुएँ का निकलना यह सिद्ध करता है कि मोमबत्ती के जलने से वायु गर्म होकर हल्की हो गई और वह उसके ऊपर वाली चिमनी से निकल जाती है। उनका स्थान लेने के लिए दूसरी चिमनी से ठंडी वायु बक्से के अन्दर आ रही है।

इसी आधार पर कमरों में रोशनदान ऊपर की ओर बनाए जाते हैं ताकि उनमें से कार्बन-डाई-

ऑक्साइड युक्त गर्म हवा निकल सके। खिड़कियाँ नीचे की ओर बनी होती हैं, ताकि उनके द्वारा ताज़ी वायु कमरों में प्रवेश कर सके।

आपने सिनेमा तथा अन्य बड़े कमरों में देखा होगा कि छत से सटे हुए ऐसे पंखे लगे होते हैं जो हॉल के अन्दर की गर्म वायु को खींचकर बाहर निकालते रहते हैं। इन्हें 'एक्ज़हास्ट फेन' (Exhaust Fan) या निकास पंखे कहते हैं, तथा इनकी पंखड़ियाँ साधारण पंखे से उल्टी होती हैं।

कमरे के अन्दर जली हुई अंगीठी आदि बन्द करके नहीं सोना चाहिए क्योंकि अंगीठी जलने में भी कमरे की ऑक्सीज़न का इस्तेमाल हो जाता है और कार्बन-डाई-ऑक्साइड तथा कार्बन-मोनो-ऑक्साइड गैस काफी मात्रा में बन जाती है। इससे कमरे में सोए हुए व्यक्तियों का दम घुटने लगता है और कभी-कभी तो ऐसी दशा में कमरे में सोए हुए व्यक्तियों की मृत्यु तक हो जाती है।

व्यायाम

अगर किसी मशीन को महीनों तक न चलाएँ तो उसमें ज़ंग लगने लगता है और वह ख़राब हो जाती

है । इसी प्रकार अगर मनुष्य शरीर से ठीक प्रकार से कार्य न करे तो वह सुस्त और रोगी हो जाता है । आपने बहुत से व्यक्तियों और ऐसे दुकानदारों को देखा होगा, जिनका शरीर और पेट दोनों ही भारी हो जाते हैं । उनके एक ही जगह बैठे रहने से रक्त उचित मात्रा में सब अंगों में नहीं पहुँच पाता जिससे उनकी पाचन क्रिया पर भी प्रभाव पड़ता है । वह ठीक-ठीक प्रकार से चल भी नहीं सकते। शरीर से काम लेना व सब मांस-पेशियों को कार्य करने का अवसर देने से ही मनुष्य स्वस्थ रह सकता है ।

व्यायाम प्रत्येक व्यक्ति के लिए आवश्यक है। व्यायाम करने से शरीर में रक्त की गति तेज़ हो जाती है । रक्त शरीर के सभी अंगों में ठीक मात्रा में पहुँच जाता है जिससे शक्ति उत्पन्न होती है । हृदय को भी व्यायाम करने का अवसर मिलता है । व्यायाम करने के पश्चात् गहरे साँस लेने से फेफड़ों को शुद्ध वायु मिलती है । व्यायाम हमेशा शुद्ध वायु में सुबह और शाम करना चाहिए। व्यायाम करने से शरीर ठीक और चित्त प्रसन्न रहता है। रोग के कीटाणु उससे दूर भागते हैं । क्रिकेट, हॉकी, फुटबाल, टैनिस, दौड़ना तैरना, कबड्डी आदि सब लाभदायक व्यायाम हैं।

कठिन कार्य या खेलने के पश्चात् हमें थकान महसूस होने लगती है। इसका कारण यह है कि शरीर में विषैले पदार्थ बन जाते हैं। यह विषैले पदार्थ साँस, पसीना तथा मूत्र आदि के द्वारा बाहर निकलते रहते हैं। लगातार कार्य करने से इन विषैले पदार्थों को बाहर निकलने का समय नहीं मिलता और यह काफी मात्रा में इकट्ठे हो जाते हैं। शरीर के किसी हिस्से से लगातार काम करते रहने से वह इतना थक जाता है कि इसमें काम करने की शक्ति कम हो जाती है। अधिक खेलने-कूदने से शारीरिक और अधिक पढ़ने-लिखने से मानसिक थकान पैदा होती है। अगर शरीर या मस्तिष्क को थोड़ी देर आराम दिया जाए तो उसे फिर शक्ति प्राप्त हो जाती है और मनुष्य कार्य करने के लिए फिर तैयार हो जाता है। आराम करने से एक जगह इकट्ठे करते हुए विषैले पदार्थ शरीर से बाहर निकल जाते हैं और शरीर में स्फूर्ति पैदा हो जाती है।

४ | ऑक्सीजन के अन्य उपयोग

ऑक्सीजन मनुष्य को केवल स्वस्थ ही नहीं, बल्कि कभी-कभी मृत्यु शैय्या से भी उठाकर जीवित कर देती है। यह तो आप जानते ही हैं कि वायुमण्डल पृथ्वी को अच्छी प्रकार से घेरे हुए है, परन्तु इसमें ऑक्सीजन की मात्रा भिन्न-भिन्न स्थानों पर, भिन्न-भिन्न मौसम में तथा भिन्न-भिन्न ताप पर भिन्न-भिन्न होती है। ऑक्सीजन की मात्रा दोपहर और शाम की अपेक्षा सुबह अधिक होती है। गर्मियों में धूल के कण वायुमण्डल में अधिक पाए जाते हैं। शहरों में वायु में कार्बन-डाई-ऑक्साइड की मात्रा गाँवों की अपेक्षा अधिक होती है। हम जैसे-जैसे ऊँचाई पर चढ़ते हैं, वायु हल्की होती जाती है, अर्थात् उसमें ऑक्सीजन की मात्रा भी कम होती जाती है। जब हम बहुत ऊँचे पहाड़ों की चोटी पर अर्थात् समुद्र के तट से सोलह हज़ार फुट से अधिक ऊँचाई पर जाते हैं तो वहाँ वायु का दवाव वहुत ही कम हो जाता है। उस वायु में ऑक्सीजन की मात्रा

भी काफी कम होती है। मनुष्य का स्वभाव है कि उन

पीठ पर ऑक्सीजन के सिलेंडर दिखाई दे रहे हैं।

चीज़ों की खोज करे जिसका अब तक पता नहीं है और उन वस्तुओं पर विजय प्राप्त करे जो मनुष्य का मुका-

बिला करने के लिए खड़ी हैं। माउंट एवरेस्ट की चोटी पर वर्षों से लोग चढ़ने का प्रयत्न कर रहे थे। तेनसिंह और हिलेरी ने 29 मई, 1953 को इस चोटी को विजय किया और वहाँ अपने देश का झंडा फहराया। समय-समय पर लोग इन पहाड़ों की चोटी पर चढ़ने का प्रयास करते रहते हैं, परन्तु इतनी ऊँचाई पर ऑक्सीजन बहुत ही कम होती है। फिर बिना ऑक्सीजन के यह लोग जीवित कैसे रहते हैं ? साँस लेने के लिए इन लोगों को अपने साथ ऑक्सीजन के सिलेंडर ले जाने पड़ते हैं। जिस समय इनकी साँस की क्रिया में कठिनाई महसूस होती है तब यह साथ लाई गई ऑक्सीजन का प्रयोग करते हैं और शक्ति को बनाए रखते हैं।

पहाड़ों पर तो साँस लेने की क्रिया में कठिनाई होती ही है, परन्तु कभी कभी मैदानों में भी कृत्रिम ऑक्सीजन की आवश्यकता पड़ जाती है। जब किसी मनुष्य के फेफड़े निमोनिया आदि के कारण भली प्रकार काम नहीं कर पाते तो वह ठीक प्रकार से साँस नहीं ले पाता। क्योंकि उसके शरीर में फेफड़े खराब होने के कारण इतनी ऑक्सीजन नहीं प्रवेश करती जितनी ऑक्सीजन की उसको साधारण रूप से आवश्यकता होती है। ऑक्सीजन की कमी के कारण

उसकी दशा बड़ी ही चिन्ताजनक हो जाती है। उस समय डॉक्टर रोगी को बचाने के लिए एक विशेष तम्बू का प्रयोग करते हैं जिसे ऑक्सीजन का तम्बू कहते हैं। इस तम्बू से मनुष्य का चेहरा ढंक देते हैं और ऑक्सीजन तम्बू में छोड़ दी जाती है। रोगी इस ऑक्सीजन की सहायता से जीवित रहता है और उसका इलाज होता रहता है। इस तम्बू में वायु की तुलना में ऑक्सीजन की मात्रा बहुत अधिक होती है। जब उस रोगी के फेफड़े ठीक हो जाते हैं तो तम्बू हटा दिया जाता है और रोगी साधारण वायु में साँस लेने के योग्य हो जाता है।
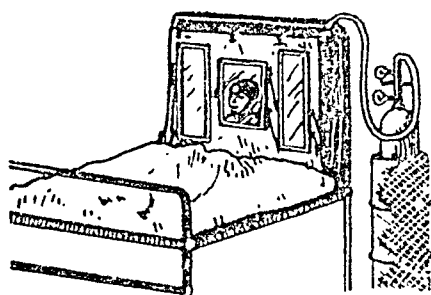
ऑक्सीजन का तम्बू

कभी-कभी ऑपरेशन करते समय या किसी दुर्घटना के कारण मनुष्य के फेफड़े का कार्य धीमा हो जाता है, तो रोगी की शक्ति को बनाए रखने के लिए कृत्रिम रूप से ऑक्सीजन दी जाती है। ऐसे व्यक्तियों की नाक में ऑक्सीजन के सिलेंडर से जुड़ी हुई ट्यूब

डाल दी जाती है।

छोटे बच्चों को जब पक्षाघात यानी पोलियो (Polio) हो जाता है तो उनके फेफड़े ठीक प्रकार से कार्य नहीं कर पाते। उन्हें कृत्रिम साँस देने के लिए लोहे के फेफड़े उनके शरीर पर लगा दिए जाते हैं। यह उन रोगियों की छाती पर इस ढंग से लगाए जाते हैं कि वायु का दबाव प्रति मिनट बारह गुना हो जाता है। जब दबाव छाती की हड्डियों पर पड़ता है तो उसके कारण फेफड़ों की हवा बाहर निकल जाती है और जब दबाव हटा लिया जाता है तो बाहर की हवा अन्दर फेफड़ों में चली जाती है और छाती की हड्डियाँ ऊपर उठ जाती हैं। इसी क्रिया को दोहराने से उसे साँस मिलता रहता है।
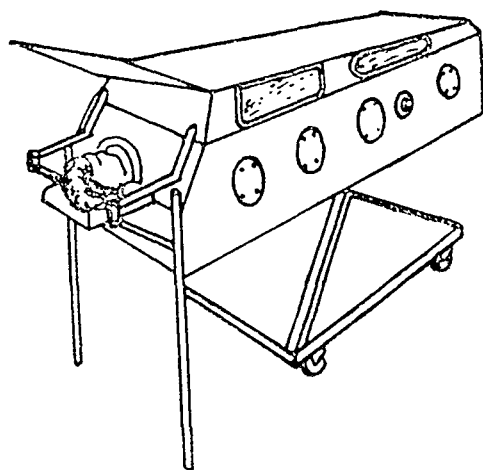
लोहे के फेफड़ों द्वारा कृत्रिम साँस दिलाया जा रहा है।

नदी में किसी डूबे हुए आदमी को होश में लाने के लिए डॉक्टर उस आदमी की कमर को दबाता है। वह डॉक्टर उस रोगी को उल्टा करके उसकी कमर को इस प्रकार दबाता है ताकि उसके फेफड़े, नाक और मुँह में घुसा हुआ पानी बाहर निकल जाए और उसके फेफड़ों में वायु पहुँचने लगे। बार-बार कमर के निचले हिस्से को दबाकर और थोड़ी देर रुक-रुककर यह क्रिया करने से रोगी को होश आने लगता है।

जो लोग समुद्र के कई मील गहरे तल में सीपी, स्पंज, मोती, शंख इत्यादि की तलाश में जाते हैं उन्हें
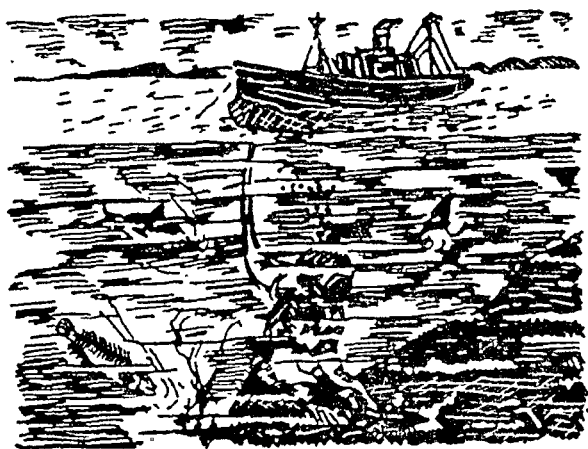
काफी समय तक पानी के अन्दर रहना पड़ता है। वे

एक विशेष प्रकार की वर्दी पहिने लेते हैं जिसमें ऑक्सीजन का प्रबन्ध होता है। और वे उसी यन्त्र से अपनी आवश्यकतानुसार ऑक्सीजन प्राप्त करते रहते हैं। वे आसानी से पानी में तैर भी सकते हैं। अपने हाथों द्वारा काम भी कर सकते हैं। गोताख़ोर जितनी देर भी चाहें, समुद्र की तह में रह सकते हैं, क्योंकि उनके पास ऑक्सीजन होने के कारण उन्हें दम घुटने का डर नहीं रहता।

आज के युग में मनुष्य के कार्य के लिए मशी-

ऑक्सी-एसिटीलिन लौ से धातु काटी जा रही है
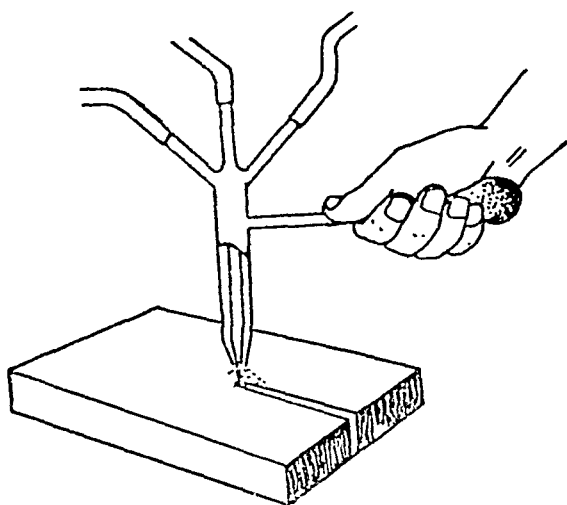
नरी का बड़ा प्रयोग होता है। बड़े-बड़े कारखाने व

बड़े-बड़े बाँध बनाने के समय ऑक्सीजन से अनेक लाभ उठाए जाते हैं। यह तो आप जानते ही हैं कि ऑक्सीजन में वस्तुएँ बहुत तेज़ी से और अधिक तापक्रम से जलती हैं। इसकी इन विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए ऑक्सी-एसिटीलिन और ऑक्सी-हाइड्रोजन फ्लेम का प्रयोग होता है।

एक-बीली-पाइप में एक ओर से ऑक्सीजन और दूसरी ओर से एसिटीलिन या हाइड्रोजन गैस आती है। उनके जलने से जो शोला उत्पन्न होता है उसका तापक्रम 3000 सेण्टीग्रेड तक होता है। उसकी सहायता से लोहे की चादरें आसानी से जोड़ी और काटी जा सकती हैं।

विज्ञान ने जितनी प्रगति इस युग में की है उसका अनुमान नहीं लगाया जा सकता। रूस और अमरीका में कई व्यक्ति रॉकेट में बैठकर पृथ्वी के कई चक्कर लगा चुके हैं तथा वह पृथ्वी पर सुरक्षित वापिस आ गये हैं। वे दिन दूर नहीं जबकि मनुष्य चन्द्रलोक की यात्रा के लिए जाया करेंगे। एक ओर तो हम यह कहते हैं कि अधिक ऊँचे पहाड़ों पर जाकर वायु में ऑक्सीजन की मात्रा कम हो जाती है और दूसरी ओर व्यक्ति सौ मील से अधिक ऊँचाई पर जाने के बाद भी जीवित

लौट आता है। इतनी ऊँचाई पर ये साँस कैसे लेते रहते हैं ? यह लोग भी अपने साथ ऑक्सीजन के यन्त्र ले जाते हैं जिनके द्वारा यह ऑक्सीजन की कमी को महसूस नहीं करते और यन्त्र की सहायता से साँस लेते रहते हैं।

इन उपयोगों के अतिरिक्त अनेक औषधियों और रंग-रोगन में भी ऑक्सीजन का प्रयोग होता है।

पारे का ऑक्साइड, ज़िंक ऑक्साइड तथा अनेक अन्य ऑक्साइड़ पदार्थों के साथ ऑक्सीजन के मिलने के कारण ही बनते हैं। इन्हीं ऑक्साइडों को तरह-तरह के रंग बनाने में इस्तेमाल किया जाता है। लाल, पीले, नीले, हरे रोगन जो हमारे घर की खूबसूरती को चार चाँद लगाते हैं, इस ऑक्सीजन की ही देन हैं।

युद्ध में तरह-तरह के बम फटने से अनेक प्रकार की ज़हरीली गैसें पैदा होती हैं। यदि मनुष्य उन गैसों में साँस ले ले, तो उसके जीवन को ख़तरा उत्पन्न हो जाता है। इन गैसों से बचने के लिए एक प्रकार का यन्त्र प्रयोग किया जाता है, इसे 'गैस मास्क' कहते हैं। यह गैस मास्क मुँह पर लगाया जाता है तथा इसमें ऑक्सीजन का प्रबन्ध भी होता है। कभी-कभी पुलिस भीड़ को तितर-बितर करने के लिए अश्रुगैस

का प्रयोग करती है, परन्तु इसे छोड़ने वाले सिपाही अपने चेहरे पर 'गैस मास्क' लगाकर इससे बचते हैं।

तपेदिक के रोगियों को ऐसे हस्पतालों में भेजा जाता है जो पहाड़ों पर स्थित होते हैं। ये अस्पताल आम तौर पर उन पहाड़ों पर बनाए जाते हैं, जहाँ चीड़ के वृक्ष अधिक होते हैं और आबादी बहुत कम। उन पहाड़ों पर वायु में अधिक ऑक्सीजन होती है, अतः वहाँ रोगी शहर की अपेक्षा जल्दी स्वस्थ हो जाते हैं।

इस प्रकार जीवधारियों के लिए ऑक्सीजन बहुत ही अनिवार्य है। जहाँ ऑक्सीजन है, जीवन वहीं है। ऐसी सम्भावना है कि चन्द्रमा, बुध, शनि आदि ग्रहों पर ऑक्सीजन न होने के कारण किसी भी प्रकार के जीवधारी नहीं हैं।

पहाड़ पर चढ़ते समय, खान तथा समुद्र में उतरते समय, रॉकेटों में यात्रा करते समय तथा अस्पताल में रोगियों को कृत्रिम श्वास दिलाने के लिए सिलेण्डरों में भरी ऑक्सीजन इस्तेमाल की जाती है। सिलेण्डरों में भरने के लिए ऑक्सीजन तैयार करने की कई विधियाँ हैं। कुछ विधि ऑक्सीजन को थोड़ी मात्रा में तथा अन्य विधियाँ अधिक मात्रा में तैयार करने के

लिए अपनाई जाती हैं।

थोड़ी मात्रा में

(1) पारे के लाल आॅक्साइड को गर्म करने से आॅक्सीजन उत्पन्न होती है और पारा शेष रह जाता है। लाल आॅक्साइड को एक परखनली में भरकर गर्म किया जाता है। इस परखनली में डाट लगाकर
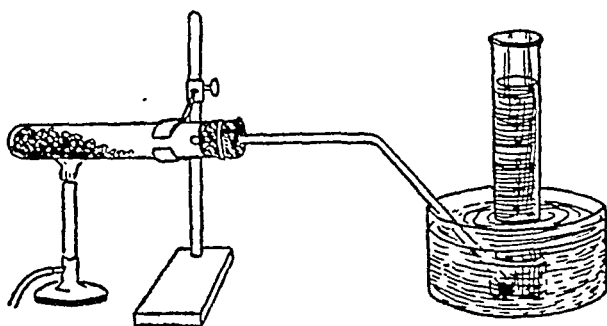
एक निकास नली जोड़ दी जाती है। निकास नली के दूसरे सिरे से गैस निकलनी शुरू हो जाती है। पारे के लाल आॅक्साइड के स्थान पर पोटेशियम क्लोरेट, सीसे के नाइट्रेट आदि को गर्म करके भी आॅक्सीजन तैयार की जा सकती है।

(2) ऊपर के प्रयोग में अधिक गर्मी की आवश्यकता होती है। अतः पोटेशियम क्लोरेट के साथ मैंगनीज-

डाई-ऑक्साइड को 4 और 1 के अनुपात में मिलाया जाता है। इसे 'ऑक्सीजन मिश्रण' भी कहते हैं। सख्त काँच की एक परखनली इस मिश्रण को भरकर चित्र की भाँति स्टैण्ड पर कस ली जाती है, इसे मुँह की ओर थोड़ा-सा तिरछा रखते हैं। चित्र की भाँति इस नली में निकास नली लगाकर ऑक्सीजन को जार में इकट्ठा कर लिया जाता है। इन जारों में भरी हुई ऑक्सीजन को हम किसी भी काम में प्रयोग कर सकते हैं।

अधिक मात्रा में ऑक्सीजन तैयार करना

(1) जहाँ बिजली सस्ती है, वहाँ पानी में बिजली गुज़ारकर उसका विच्छेदन किया जाता है। पानी बिजली का सुचालक नहीं है, अतः इसमें बिजली गुज़ारने के लिए थोड़ा-सा बरैटा डाल दिया जाता है। जिस बर्तन में पानी भरा होता है, उसी में दो इलैक्ट्रोड होते हैं। इन्हें बिजली की धारा से जोड़ दिया जाता है। इलैक्ट्राडों के ऊपर पानी से भरी लम्बी नलियाँ रख दी जाती हैं। जब बिजली की धारा पानी से गुज़रती है तो पानी का हाइड्रोजन और ऑक्सीजन में विच्छेदन हो जाता है। एक नली में ऑक्सीजन इकट्ठी

हो जाती है और दूसरी में हाइड्रोजन।

(2) यदि हवा को बहुत अधिक ठंडा किया जाए और उस पर खूब दबाव डाला जाए तो हवा द्रवीभूत हो जाती है । जब द्रवीभूत हुई वायु पर दबाव कम कर दिया जाता है तो यह द्रव फिर गैस के रूप में परिवर्तित होने लगता है। एक साइकिल के हवा भरे ट्यूब का वाल्व यदि ढीला करें और उसके पास एक थर्मामीटर लगाकर देखें तो पता चलेगा कि उस वायु का तापक्रम कम है। यदि किसी अधिक दबाव-युक्त गैस को एक छोटे-से रास्ते से छोड़ा जाए तो वह गैस फैल जाती है और साथ ही साथ उसका ताप भी गिर जाता है। इसी सिद्धान्त के आधार पर वायु को द्रवीभूत करके अधिक मात्रा में आॅक्सीजन बनाई जाती है।

हवा को वायुमण्डल के दबाव की अपेक्षा दो सौ गुना अधिक दबाया जाता है, उसके साथ ही उसे पानी द्वारा ठंडा किया जाता है। इसको फिर चित्र की भाँति एक घुमावदार नली में से गुज़ारा जाता है जिसके एक सिरे पर सुई जैसा कपाट होता है। जब वायु इस रास्ते में से होकर बाहर निकलती है तो यह बहुत ही ठंडी हो जाती है। इस ठंडी हवा को फिर दोबारा एक नली के द्वारा एक पम्प की ओर ले जाया जाता

है जो इस वायु को दबाता है। जब यह दोबारा बाहर की ओर निकलती है तो इससे अन्दर की हवा और अधिक ठंडी हो जाती है। इस प्रकार अनेक बार इस क्रिया
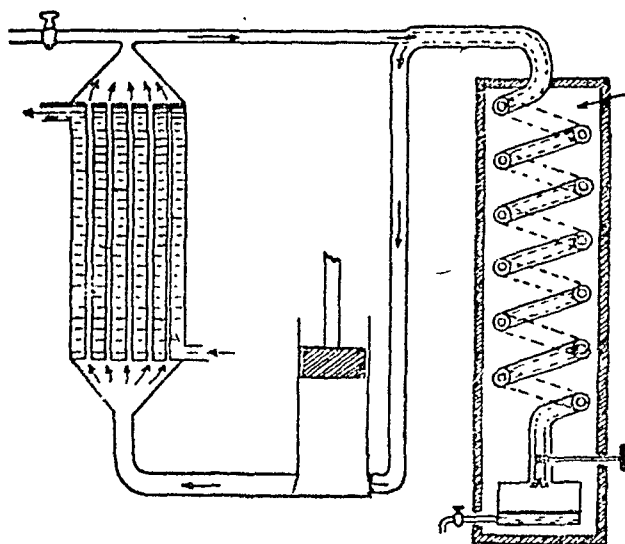
को दोहराने से वायु द्रवीभूत होने लगती है और नीचे रखे हुए बर्तन में इकट्ठी हो जाती है। बाहरी गर्मी के प्रभाव से इस यन्त्र को बचाने के लिए घुमावदार नली के चारों ओर नमदा या ऊन भर दी जाती है। तरल ऑक्सीजन -182° सेन्टीग्रेड पर उबलती है जबकि तरल ऑक्सीजन -195° सेन्टीग्रेड पर उबलती

है। इसलिए जब तरल वायु को छोड़ दिया जाता है तो पहले तरल नाइट्रोजन वायु में परिवर्तित हो जाती है और ऑक्सीजन शेष रह जाती है। फिर इस बची हुई ऑक्सीजन को विशेष प्रकार के सिलेण्डरों में भर लिया जाता है। यह सिलेण्डर थर्मस बोतल के समान विशेष धातु के बने होते हैं। इस पर वायु का प्रभाव नहीं पड़ता। इन सिलेण्डरों को कहीं भी ले जाया जा सकता है।

9 | शुद्ध वायुमण्डल

वस्तुओं के जलने, गलने, सड़ने तथा जीवधारियों के साँस लेने से वायुमण्डल में ऑक्सीजन की मात्रा कम होती रहती है अर्थात वायुमण्डल दूषित होता रहता है। लेकिन प्रकृति ने तो इसे शुद्ध करने का भी प्रबन्ध किया है। प्रकृति ने तो अपनी ओर से मनुष्य को स्वस्थ बनाए रखने के लिए सभी प्रबन्ध किए हैं। बहुत से प्राकृतिक साधन वायुमण्डल को शुद्ध करने में बहुत ही सहायक होते हैं।

सूर्य का प्रकाश

सूर्य के प्रकाश में ही पौधों में फोटो-संश्लेषण की क्रिया होती है, जिसके द्वारा कार्बन डाई-ऑक्साइड की मात्रा कम होती जाती है और ऑक्सीजन की मात्रा बढ़ जाती है। इसके अतिरिक्त जब गंदी वायु सूर्य के प्रकाश से टकराती है तो वायु में मौजूद कीटाणु नष्ट हो जाते हैं। कीटाणु आम तौर पर सीली और अंधेरी जगहों में पनपते हैं। इसलिए

अंधेरी और तंग जगहों में रहना तथा कार्य करना दोनों ही स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं।

वर्षा

वर्षा होने के कारण वायुमण्डल, पेड़-पौधे सभी धुले हुए और साफ़ दिखाई देते हैं। वर्षा केवल वायुमण्डल को ही शुद्ध नहीं करती अपितु वायु में तैरती हुई गन्दगी जैसे रेत, धूल, कोयले के कण वर्षा के जल के साथ पृथ्वी पर आ जाते हैं। अनेक हानिकारक गैसें जैसे अमोनिया, सल्फर डाई-ऑक्साइड भी वर्षा के पानी में घुलकर पृथ्वी पर आ जाती हैं। तेज वर्षा के कारण मृत-जीव तथा बहुत से रोगों के कीटाणु भी नष्ट हो जाते हैं।

गैसों का विसरण (डिफ्यूज़न)

गैसों में आपस में घुलमिल जाने का गुण होता है जिससे कोई दो अलग-अलग गैसें कुछ मिनटों में एक जान हो जाती हैं और अलग-अलग पहचानी नहीं जा सकतीं। प्रत्येक गैस गर्म होकर वायु में फैल जाती है। इसलिए कार्बन डाई-ऑक्साइड, अमोनिया, हाइड्रोजन सल्फाइड, सल्फर डाई-ऑक्साइड जैसी हानिकारक गैसें एक ही स्थान पर इकट्ठा होने के बजाय वायु में मिल जाती हैं

और उनका प्रभाव बहुत कम हो जाता है और इस तरह से उनकी हानि पहुँचाने की शक्ति कम हो जाती है। तेज़ हवाओं के चलने से जल्दी ही वायुमण्डल में फैल जाती हैं और इस तरह जीवधारियों को इन गैसों से हानि नहीं हो पाती।

ऑक्सीजन और ओजोन

ओजोन भी ऑक्सीजन की तरह एक गैस है। वायुमण्डल में इसकी मात्रा प्रातःकाल कुछ अधिक होती है और यह सजीव पदार्थों के साथ मिलकर उनका ऑक्सीक़रण कर देती है। इस क्रिया में इसमें मौजूद कुछ ऑक्सीजन मुक्त हो जाती है। इस प्रकार यह गैस भी वायु को शुद्ध करने में सहायता देती है।

पक्षी और जन्तु

ग़ीदड़, कुत्ते, सूअर, गिद्ध और कौवे इत्यादि जानवरों के गले-सड़े माँस तथा अन्य गली-सड़ी वस्तुएँ खाते हैं, इस प्रकार यह भी वायु को दूषित होने से रोकते हैं।

नदी और झरना

आम तौर पर देखा गया है कि नदी के किनारे का वायुमण्डल अन्य स्थानों की अपेक्षा अधिक शुद्ध होता है। आश्चर्य की बात है कि बड़े-बड़े शहरों की सभी गन्दगी नदी में बहा दी जाती है। गंगा

नदी जो बीसों बड़े-बड़े नगरों में से होकर बहती है, उसमें उन नगरों की गन्दगी बहा दी जाती है फिर भी उसका जल शुद्ध समझा जाता है। इसका कारण यह है कि जब नदियों का बहता हुआ पानी वायुमण्डल की ऑक्सीजन के सम्पर्क में आता है तो कीटाणु नष्ट हो जाते हैं जिससे उनका जल और वायु-मण्डल दोनों ही शुद्ध हो जाते हैं। यदि किसी शहर के समीप नदी के पानी की जाँच की जाए और फिर वहाँ से तीन मील दूर जाकर नदी के पानी को फिर देखा जाए तो उस पानी में गन्दगी लगभग नहीं के बराबर होगी। इसलिए बहता पानी स्वच्छ और शुद्ध होता है।

झरने के पानी में नहाकर लोग बहुत स्फूर्ति महसूस करते हैं। पानी तो सब जगह एक सा ही होता है, फिर झरने के पानी में नहाने से स्फूर्ति क्यों आती? इसका कारण यह है कि झरने का पानी जब अधिक ऊँचाई से गिरता है तो उसमें वायुमण्डल की ऑक्सी-जन मिल जाती है, जो कीटाणुओं को नष्ट करके मनुष्य को लाभ पहुँचाती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वायुमण्डल को शुद्ध करने के लिए प्रकृति ने बहुत से साधन जुटाए हैं,

परन्तु मनुष्य वायुमण्डल को दूषित करने में जुटा रहता है। आजकल तरह-तरह के बमों के परीक्षण किए जा रहे हैं। इन बमों से निकलने वाली गैसें वायुमण्डल को बहुत दूषित करती हैं। इन बमों से पैदा होने वाले दूषित वातावरण को साधारण क्रियाओं द्वारा शुद्ध नहीं किया जा सकता। भले ही हमें इनके ज़हरीले प्रभाव का अनुभव न हो, परन्तु आने वाली पीढ़ियाँ इस दूषित वातावरण का कुपरिणाम भोगेंगी। अतः यह परम आवश्यक है कि ऐसे बमों का छोड़ा जाना और उनके परीक्षणों को तत्काल बन्द किया जाए।

दूसरे, मनुष्य पेड़ों और जंगलों को काट रहा है—नई बस्तियाँ, कारखाने आदि बनाए जा रहे हैं। यह हम देख ही चुके हैं कि वायुमण्डल में ऑक्सीजन की मात्रा को बढ़ाये रखने में हरे पेड़-पौधे और जंगल कितने अधिक सहायक होते हैं। अतः मनुष्य को चाहिए कि पेड़-पौधों को न काटे बल्कि इसके विपरीत अधिक से अधिक वृक्ष लगाए, क्योंकि वृक्षों की हरियाली ऑक्सीजन उत्पन्न करती है। मकान में हरे पौधे लगाने से केवल सुन्दरता में ही वृद्धि नहीं होती अपितु ये पौधे रहने के स्थान पर कार्बन डाई-ऑक्साइड की मात्रा को चूसकर घर के वातावरण को शुद्ध करते हैं।

हम यह भी देख चुके हैं कि कारखानों में ईंधन आदि के जलने से कार्बन डाई-ऑक्साइड अधिक मात्रा में बनती है। अतः यह आवश्यक है कि कारखानों को बस्ती से दूर बनाना चाहिए, धुआँ निकलने के लिए उनकी चिमनियाँ ऊँची हों अथवा उनमें कोई ऐसा साधन हो कि वायुमण्डल में कार्बन डाई-ऑक्साइड कम से कम मात्रा में मिल सके।

आपने बस, कार, ट्रक, रेल आदि में भी पेट्रोल, डीज़ल तेल या कोयला जलने के कारण धुआँ निकलता देखा होगा। इस धुएँ में भी कार्बन डाई-ऑक्साइड ही होती है जो स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। अतः इनमें इस प्रकार के ईंधन या यन्त्र का प्रयोग होना चाहिए कि इस प्रकार की गैसें वायुण्मडल में न मिल सकें। वैज्ञानिक इस दिशा में खोज कर रहे हैं।

शहरों में रहने के स्थान की कमी होती है। आम तौर पर लोग छोटे-छोटे मकानों में, तंग अंधेरी गलियों में रहते हैं। बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली जैसे नगरों में तो ऐसी गन्दी बस्तियाँ बहुत ही होती हैं तथा छोटे-छोटे कमरों में भी दसों व्यक्ति रहते हैं। ऐसे तंग स्थानों पर रहने वाले व्यक्तियों को शुद्ध वायु नहीं मिल पाती और उनका रंग पीला पड़ जाता है,

पाचनक्रिया मन्द हो जाती है, भूख कम लगती है, सिर में दर्द रहता है तथा स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है तथा इनके शरीर में शक्ति कम उत्पन्न होती है और ये व्यक्ति शीघ्र ही रोग के शिकार हो जाते हैं। यह सब इसलिए होता है कि इन बस्तियों के वायुमण्डल में ऑक्सीजन की मात्रा अपर्याप्त होती है। अतः यह आवश्यक है कि ऐसी गन्दी बस्तियों को नष्ट करके खुले वातावरण में खुले हुए मकान बनाए जाएँ ताकि व्यक्तियों को शुद्ध वायु मिल सके।

यह धुआँ और गन्दी वायु केवल मनुष्य को ही नहीं बल्कि पेड़-पौधों को भी हानि पहुँचाती है। कारखानों और रेलों से निकलने वाले धुएँ में कार्बन के कण बहुत होते हैं। यह कण पौधों की पत्तियों पर जब उनके स्टोमैटा या रन्ध्रों को बन्द कर देते हैं जिसके कारण पौधों की वृद्धि तो रुकती ही है, साथ ही पौधे ऑक्सीजन पैदा करने से भी रुक जाते हैं। इस कारण ही रेल की पटरी तथा कारख़ानों के आस-पास के पेड़-पौधों का पूरा विकास नहीं हो पाता।

ऑक्सीजन और वायुमण्डल की इतनी जानकारी हो जाने के पश्चात् प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि वह वायुमण्डल को दूषित न स्वयं करे और न इसे दूषित

होने दे। वायुमण्डल को दूषित होने से रोककर मनुष्य केवल अपने जीवन और स्वास्थ्य की ही रक्षा नहीं करेगा, अपितु शुद्ध वायुमण्डल में अन्य सभी जीव भी स्वस्थ जीवन बिता सकेंगे।